वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६२ अंक ८
अगस्त २०२४

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६२

अंक ८

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

श्रावण, सम्वत् २०८१

अगस्त, २०२४

अनुक्रमणिका

* विचारों के सामंजस्य और अनासक्ति के प्रतीक थे श्रीकृष्ण : विवेकानन्द ३४२
* श्रीकृष्ण का शौर्य (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ३४५
* भगवान श्रीकृष्ण की दिनचर्या का लौकिक और पारलौकिक महत्त्व (राजकुमार गुप्ता) ३४८
* (बच्चों का आंगन) राय बाघिनी रानी भवशंकरी (श्रीमती मिताली सिंह) ३५५
* स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में संस्कृत और संस्कृति (स्वामी दयापूर्णानन्द) ३५६
* वाराणसी के गोपाल लाल विला में विवेकानन्द : कुछ अज्ञात तथ्य (शान्ति कुमार घोष) ३५९
* सत्संग से नि:संगता आती है (स्वामी सत्यरूपानन्द) ३६१
* (युवा प्रांगण) कमिंग विथ ब्रदर – दुर्गा देवी (स्वामी गुणदानन्द) ३६२
* राष्ट्र-निर्माण में मन्दिरों का महत्त्व (साकेत विहारी पाण्डेय) ३६४
* सोशल मीडिया की प्रवृत्ति से युवाओं को बचाना आवश्यक है (डॉ. हिमांशु द्विवेदी) ३७५
* श्रीराम और श्रीरामकृष्ण (स्वामी निखिलात्मानन्द) ३७६
* (काव्य-लहरी) गाता हूँ मैं भारत-गान (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), वेणु बजी मनमोहन की (श्रीधर), तब ही जीवन सुखमय होगा (विजय कुमार श्रीवास्तव), विवेकानन्द वन्दना (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') ३५४

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ३४१
पुरखों की थाती ३४१
सम्पादकीय ३४३
श्रीरामकृष्ण-गीता ३५०
रामगीता ३५१
प्रश्नोपनिषद् ३७१
गीतातत्त्व-चिन्तन ३७२
साधुओं के पावन प्रसंग ३८०
समाचार और सूचनाएँ ३८२

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २०/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	२५०/-	१२५०/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

अगस्त माह के जयन्ती और त्यौहार

०२	स्वामी रामकृष्णानन्द
१५	स्वतन्त्रता दिवस
१९	स्वामी निरंजनानन्द
२९	श्रीकृष्णजन्माष्टमी
१६,२९	एकादशी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर दर्शायी गयी स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति विवेकानन्द विद्यापीठ, चेन्नई की है।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्रीमती शोभा सिंह, राजपुर,सीतामढ़ी (बिहार)	२,५०१/-
श्री केवलराम साहू, मगरलोड, धमतरी (छ.ग.)	२,०००/-
पूर्णेश्वरी वार्ष्णेव, बस्नी-१, जोधपुर (राज.)	२,०००/-

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७२५. श्री अरूण कुमार सिंह, शहपुरा, जबलपुर (म.प्र.)	लाईब्रेरी, विवेकानन्द विद्या मन्दिर, लखौली-आरंग (छ.ग.)

रामकृष्ण मिशन आश्रम,

मोराबादी, राँची - 834008 (1927-2027),

e-mail : ranchi.morabadi@rkmm.org, Web : www.rkmranchi.org

श्रीरामकृष्ण मन्दिर नवनिर्माण के लिए विनम्र निवेदन

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य श्रीमत् स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज के चरण रज से पवित्र तथा श्रीश्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य एवं रामकृष्ण संघ के आठवें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज की तपस्थली ''रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची'' की स्थापना 1927 में हुई थी। शीघ्र ही वर्ष 2027 ई. में इस आश्रम की स्थापना का शताब्दी वर्ष प्रभु कृपा से हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाएगा । रामकृष्ण संघ के 11 वें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज के तपस्या से पवित्र इस आश्रम हेतु हम सभी अनुरागी, भक्तों और शुभ-चिन्तकों के लिए सेवा-यज्ञ में आहुति प्रदान करने का यह परम-पवित्र अवसर है । आश्रम के इस शताब्दी वर्ष में विशेषकर राँची जिला के निकवटवीं गाँवों में आदिवासी जनजाति के कल्याण के साथ-साथ उनके सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम का आयोजन श्रीश्रीठाकुर, श्रीमाँ तथा स्वामीजी द्वारा प्रदत्त पथ के माध्यम से हो रहा है ।

आश्रम परिसर में श्रीश्रीठाकुर, श्रीश्रीमाँ तथा स्वामीजी का वर्तमान मन्दिर अत्यन्त छोटा तथा भग्नावस्था में है । अतः मन्दिर का नव निर्माण अनिवार्य है इसके साथ ही साथ आश्रम परिसर के परिदृश्य (लैंड स्केपिंग) में भी आवश्यक सुधार अपेक्षित है। इसके अलावा साधु निवास, रसोई घर एवं भोजनालय भी प्रस्तावित है । इस विस्तार के लिए मनुमानित लागत निम्न प्रकार है :

कं.सं.	निर्माण	क्षेत्रफल (वर्ग फीट में)	प्रस्ताव	अनुमानित लागत (करोड़ में)
1.	मन्दिर तथा लैंड स्केप	15,198	दो तलों में निर्माण तथा परिसर का सौंदर्यीकरण	6.0
2.	साधु निवास, रसोई घर एवं भोजनालय	7,500	वर्तमान साधु निवास के ऊपर एक तल का निर्माण, रसोईघर, भोजनालय का पुनर्निमाण	1.5
			कुल लागत	7.5

इस शताब्दी वर्ष के अवसर पर सभी भक्तों से अनुरोध है कि कृपया इस महत्त्वपूर्ण कार्य में आप यथासंभव योगदान कर पुण्य के भागी बनें ।

ध्यातव्य : प्रदत्त दान आयकर की धारा 80 जी के अन्तर्गत करमुक्त है। एक लाख से अधिक दानदाताओं का नाम मन्दिर परिसर पर अंकित होगा । दानकर्ताओं को 4 श्रेणियों में सम्मानित किया जाएगा ।

1) रजत श्रेणी : रुपये 1 लाख से 5 लाख तक

2) स्वर्ण श्रेणी : रुपये 5 लाख से अधिक व 10 लाख तक

3) हीरक श्रेणी : रुपये 10 लाख से अधिक व 20 लाख तक

4) प्लेटेनियम श्रेणी : रु. 20 लाख से अधिक

निवेदन : मन्दिर निर्माण हेतु सहयोग राशि निम्नलिखित बैंक खाते के माध्यम से कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किये जायेंगे ।

Click Below fro Online Donation :
https://bit.ly/317 lzyh
Scan the below given QR Code to log into our Online Donation Site

Account Name : Ramakrishna Mission Ashrama,
Account No. : 50200081665283
Bank Name : HDFC BANK LTD. Morabadi,
IFSC CODE : HDFC0007443

सहयोग राशि के साथ अपना ईमेल, पैन नं., मोबाईल नं., पूरा पता एवं उद्देश्य हमारे ईमेल **ranchi.morabadi@rkmm.org** या मोबाईल नं. 9835158705 पर भेजें ।

प्रभु की सेवा में आपका
स्वामी भवेशानन्द
सचिव

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

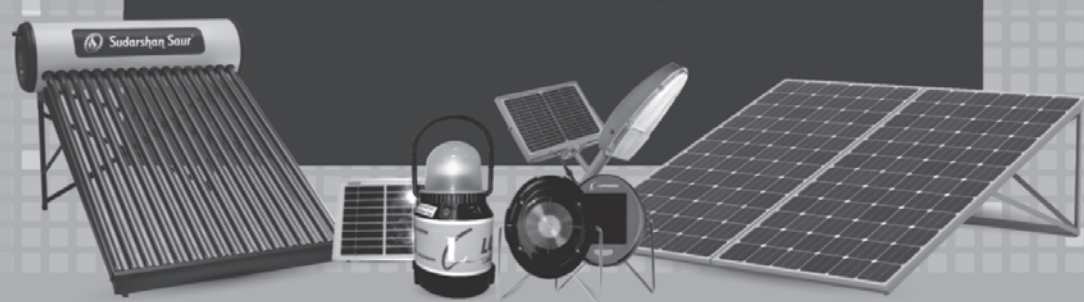

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६२ **अगस्त २०२४** **अंक ८**

श्रीकृष्ण-वन्दना

सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे।।
नमो विश्वस्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः।।
नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः।।

– सच्चिदानन्दस्वरूप, क्लेशरहित-कर्ता, वेदान्तवेद्य, गुरु एवं बुद्धि के साक्षी, साक्षात् द्रष्टा श्रीकृष्ण को नमस्कार है।

जगत् रूप में अवस्थित जगत की सृष्टि-स्थिति-संहार के कारण को नमस्कार है, जगन्नियन्ता जगदात्मा गोविन्द को पुनः-पुनः नमस्कार है।

विज्ञानस्वरूप, चित्स्वरूप, परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण को नमस्कार है, गोपीनाथ को नमस्कार है, गोविन्द को नमस्कार है।

पुरखों की थाती

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते।।८३९।।
(विदुर)

– जिस व्यक्ति के किये हुए कार्य को और दिये या लिये गये सलाह को अन्य लोग कार्य हो जाने पर ही जान पाते हैं, उसी को पण्डित या विद्वान् कहा जाता है।

यस्य धर्मविहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च।
स लोहकारभस्त्रीव श्वसन्नपि न जीवति।।८४०।।
(पंचतंत्र)

– जिस व्यक्ति के दिन धर्म आदि सत्कर्मों के बिना ही आते-जाते रहते हैं, वह मनुष्य लोहार की धौंकनी के समान साँस लेते हुए भी जीवित नहीं होता। अर्थात् उसके दिन निरर्थक ही बीतते हैं।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः।।८४१।।
(गीता)

– जिस व्यक्ति के सारे कार्य कामनाओं तथा संकल्पों से प्रेरित नहीं होते, उसके सारे कर्मफल ज्ञानरूपी अग्नि द्वारा भस्म हो जाते हैं और उन्हीं को विद्वान् लोग ज्ञानी कहते हैं।

विचारों के सामंजस्य और अनासक्ति के प्रतीक थे श्रीकृष्ण : विवेकानन्द

हमें उनके सन्देश में... श्रीकृष्ण में दो विचार सर्वोपरि मिलते हैं : पहला है विभिन्न विचारों का सामंजस्य और दूसरा है अनासक्ति। (७/२७६)

जहाँ तक मैं जानता हूँ कि वे (श्रीकृष्ण) एक सुसामंजस्यपूर्ण – मस्तिष्क, हृदय और कर्म-नैपुण्य (ज्ञान, भक्ति और कर्म) में आश्चर्यजनक रूप से सम विकसित व्यक्ति हैं। उनका प्रत्येक क्षण क्रियाशीलता से, चाहे वह एक सम्भ्रान्त जन की हो, योद्धा, अमात्य या किसी भी अन्य की हो, जीवन्त है। वे एक सम्भ्रान्त पुरुष, एक विद्वान और एक कवि के रूप में महान् हैं। इस सर्वतोमुखी और आश्चर्यजनक क्रियाशीलता तथा हृदय और मस्तिष्क के समन्वय को तुम गीता तथा अन्य ग्रन्थों में पाते हो। परम आश्चर्यजनक हृदय, उत्कृष्टतम भाषा, कहीं कुछ भी उसे पा नहीं सकता। व्यक्ति की प्रबल क्रियाशीलता, यही धारणा अब तक बनी हुई है। पाँच हजार वर्ष बीत चुके हैं और उन्होंने कोटि जन को प्रभावित किया है। जरा सोचो कि इस व्यक्ति का समग्र जगत् पर कितना प्रभाव है, भले ही तुम उससे अवगत हो या न हो। उनके प्रति मेरा सम्मान-भाव उनकी पूर्ण प्रकृतिस्थता के कारण है। उस मस्तिष्क में न तो जाले हैं, न अन्धविश्वास। वे प्रत्येक वस्तु का उपयोग जानते हैं और जब (उनमें से प्रत्येक को स्थान देना) आवश्यक होता है, वे वहाँ (विद्यमान मिलते) हैं। (७/२९२)

कृष्ण का यही महान कार्य था – हमारी आँखों को स्वच्छ कराना और मानवता की ऊर्ध्वगामी तथा अग्रगामी प्रगति को विशालतर दृष्टि से दिखाना। उनका ही पहला हृदय था, जिसमें सबमें विद्यमान सत्य को देख सकने की विशालता थी और उनकी ही प्रथम वाणी थी, जिससे प्रत्येक और सबके लिए सुन्दर शब्द उच्चरित हुए।

(७/२७६)

अहैतुकी भक्ति, यह निष्काम कर्म, यह निरपेक्ष कर्तव्य-निष्ठा का आदर्श धर्म के इतिहास में एक नया

अध्याय है। मानव-इतिहास में प्रथम बार भारतभूमि पर सर्वश्रेष्ठ अवतार श्रीकृष्ण के मुँह से पहले पहल यह तत्त्व निकला था। भय और प्रलोभनों के धर्म सदा के लिये बिदा हो गये और मनुष्य-हृदय में नरक-भय और स्वर्ग-सुख-भोग के प्रलोभन होते हुए भी ऐसे सर्वोत्तम आदर्श का अभ्युदय हुआ, जैसे प्रेम प्रेम के निमित्त, कर्तव्य कर्तव्य के निमित्त, कर्म कर्म के निमित्त।

(५/१५२)

इस जगत् में प्रत्येक मनुष्य को कर्म करना ही पड़ेगा। केवल वही व्यक्ति कर्म से परे है, जो सम्पूर्ण रूप से आत्मतृप्त है, जिसे आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी काम नहीं, जिसका मन आत्मा को छोड़ अन्यत्र कहीं भी गमन नहीं करता, जिसके लिए आत्मा ही सर्वस्व है। शेष सभी व्यक्तियों को तो कर्म अवश्य ही करना पड़ेगा। (३/७२)

सम्पादकीय

गर्व से कहो, मैं भारतवासी हूँ : स्वामी विवेकानन्द

भारत की धरा का मुक्त-कंठ से गायन प्राचीन शास्त्रों से लेकर आधुनिक कवियों तक ने किया है। भारतवर्ष की भूमि महापुरुषों की जननी है, वीर सपूतों की माता है। यह श्रेष्ठ मनीषियों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, क्रान्तिकारियों, राजनीतिज्ञों, देशभक्तों, शास्त्रज्ञों, विद्वानों, आध्यात्मिक विभूतियों, ऋषियों, आचार्यों और अवतारों की जन्मदात्री है। यहाँ की विभिन्न ऋतुएँ, प्राकृतिक सौन्दर्य, नदी, पर्वत, हिमालय, सिन्धु; सभी मानो निरन्तर इस आभा-विभा-प्रभायुक्त शक्तिसम्पन्न भारत की महिमा का उच्चारण करते रहते हैं। यहाँ की वायु के झकोरों में भारतीय सौरभ की सुगन्ध है, तो वायु से प्रतिध्वनित होनेवाली ध्वनि भारत की परम शक्ति का नित्य आभास देती रहती है।

जब-जब भारत में धर्म का ह्रास और अधर्म प्रबल हुआ, जब-जब भारतवासियों का मानस-पटल दुख और अज्ञानता के मेघ से आच्छन्न हुआ, तब-तब भारतीय जन-मानस को कष्ट मुक्त करने और हृदय में ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित करने युग-युग में आचार्यों, महापुरुषों और अवतारों का इस धरा पर आविर्भाव हुआ। इसलिये आज भी विश्व में हमारा उत्कृष्ट रूप में अस्तित्व विद्यमान है।

स्वामी विवेकानन्द की अन्तश्चेतना भारतवर्ष की महिमा-ज्योति से अविच्छिन्न रूप से प्रकाशित थी। भारत की गौरव-गाथा से उनका मन सदा स्पन्दित होता रहता था। भारतीय आध्यात्मिक मणि की ज्योति उनके मन-मस्तिष्क में सदा प्रज्वलित होती रहती थी। वे भारत में सम्पूर्ण विश्व के सर्वांगीण अभ्युदय का भविष्य देखते थे। भारतीय मिट्टी उनके लिये परम पावन और स्वर्ग से बढ़कर थी। विदेश से कलकत्ता वापस आने पर एक सप्ताह बाद स्वामीजी का अभिनन्दन शोभा बाजार के स्व. राजा राधाकान्तदेव बहादुर के निवास-स्थान पर किया गया। इस सभा की अध्यक्षता राजा विनयकृष्ण देव बहादुर ने किया। अध्यक्ष ने परिचय के बाद स्वामीजी को एक अभिनन्दन-पत्र सुन्दर चाँदी की मंजूषा में रखकर भेंट किया। स्वामीजी ने अभिनन्दन के बाद अपना व्याख्यान दिया। इसमें वे भारत के प्रति बड़ी ही मार्मिक बात कहते हैं। स्वामीजी कहते हैं – ''पश्चिमी देशों से वापस आने के कुछ ही समय पहले एक अँग्रेज मित्र ने मुझसे पूछा था, ''स्वामीजी, चार वर्षों तक विलास की लीलाभूमि गौरवशाली महाशक्तिमान पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी?'' स्वामी विवेकानन्द ने बड़ा अद्‌भुत उत्तर देते हुये कहा था, ''पश्चिम में आने से पहले मैं भारत से केवल प्रेम ही करता था, किन्तु अब तो भारत-धूलि भी मेरे लिये पवित्र है, भारत की हवा भी मेरे लिये पावन है। भारत अब मेरे लिये पुण्यभूमि है, पवित्र तीर्थ-स्थान है।''[१]

किसी अन्य स्थान पर स्वामीजी कहते हैं, ''मेरी बात पर विश्वास कीजिये। दूसरे देशों में धर्म की केवल चर्चा होती है, पर ऐसे धार्मिक पुरुष, जिन्होंने धर्म को अपने जीवन में परिणत किया हो, जो स्वयं साधक हैं, केवल भारत में ही हैं।''[२] इस प्रकार स्वामीजी ने भारत और भारतवासियों की प्रशंसा की है।

केवल मनुष्य ही नहीं, यहाँ तक कि देवता लोग भी भारतवासियों को अपने से भी अधिक भाग्यशाली मानते हैं, जिसका गायन पुराण भी सुमधुर स्वर में करते रहते हैं –

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।[३]

– स्वर्ग में देवता यही गान करते हैं कि जिसने भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे पुरुष देवताओं की अपेक्षा अधिक सौभाग्यशाली हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो धर्म-महासम्मेलन में अपने प्रथम व्याख्यान में भारत की महिमा की वन्दना करते हुये कहा था – ''मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है।''

प्रसिद्ध महाकाव्य श्रीमद्‌भागवतपुराण में व्यासजी भारत-भूमि की महिमा का वर्णन करते हुये कहते हैं –

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषा स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्द सेवौपयिकं स्पृहा हि नः।।[४]

– अहो ! ईश्वर के द्वारा कितना सुन्दर देश बनाया गया है, जिससे मनुष्य भारत भूमि में जन्म लेकर मुकुन्द भगवान श्रीकृष्ण की सेवा के योग्य बन जाता है।

ऐसा महान गौरवशाली देश जब कुछ वर्षों के लिये विदेशी आक्रान्ताओं के अधीन होकर अपना स्वाभिमान, सम्मान खोकर निराश और हताश हो गया, तब भारतवासियों में पुनः उस स्वाभिमान, गौरव और आशा का संचार करने हेतु स्वामीजी कोलम्बो में १६ जनवरी, १८९७ को फ्लोरलुम हाल में व्याख्यान देते हुये कहते हैं – ''यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है, जिसे हम धन्य पुण्यभूमि कह सकते हैं, ...यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ मानव जाति की क्षमा, धैर्य, दया, शुद्धता आदि सद्वृत्तियों का सर्वाधिक विकास हुआ है और यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ आध्यात्मिकता तथा सर्वाधिक आत्मान्वेषण का विकास हुआ है, तो वह भारत भूमि ही है।''[५]

छायावाद के एक स्तम्भ, प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद जी भारतवासी होने पर गर्व और अभिमान करते हुये उसके प्रति अपना सर्वस्व समर्पण करने को उद्यत हैं। वे भारत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये लिखते हैं –

जियें तो सदा इसी के लिये, यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें, हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।।

आधुनिक युग के कवि प्रदीप दाधीच ने अपने भारत-महिमा गीत में भारत का वर्णन इन शब्दों में किया है –

सारे जग से निराला देश है भारत प्यारा।
ये धरा ऋषि-मुनियों की, वीरों की है ये माता।
है ये भक्तों की जननी, स्वर्ग इससे शरमाता।
है ये सबकी ही विधाता, विश्व माने ये सारा।।
सारे जग से...

स्वामी विवेकानन्द भारत की विराट विश्वव्यापी आध्यात्मिक शक्ति को स्मरण दिलाते हुये कहते हैं, ''हमारे इस देश में अभी भी धर्म और आध्यात्मिकता विद्यमान हैं, जो मानो ऐसे स्त्रोत हैं, जो अबाध गति से बढ़ते हुये समस्त विश्व को अपनी बाढ़ से आप्लावित कर पाश्चात्य तथा अन्य देशों को नवजीवन तथा नवशक्ति प्रदान करेंगे।''[६]

स्वामीजी भारतवासियों में आशा का संचार करते हुये कहते हैं, ''भविष्य में क्या होनेवाला है, यह मैं नहीं देखता और न मुझे देखने की चिन्ता है। पर जिस प्रकार आमने-सामने मैं जीवन प्रत्यक्ष रूप से देख रहा हूँ, उस प्रकार अपने मनश्चक्षुओं के सम्मुख मुझे एक दृश्य स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है, मेरी यह प्राचीन मातृभूमि पुनः जग गयी है, वह सिंहासन पर बैठी है, उसमें नवशक्ति का संचार हुआ है और वह पहले से अधिक गौरवान्वित हो गयी है। संसार के सम्मुख शान्ति एवं कल्याण की मंगलमयी वाणी से उसके गौरव की घोषणा करो।''[७]

१ मार्च, १८९९ उद्बोधन में प्रकाशित बंगला लेख में स्वामीजी लेख का उपसंहार भारत-गौरवपरक आह्वानकारी वाणी से करते हैं और भारतवासियों में भारत के प्रति अटूट प्रेम और श्रद्धा-जागरण और भारतीय स्वाभिमान की प्रेरणा प्रदान करते हुये कहते हैं – ...हे वीर, साहसी बनो ! गर्व से बोलो, मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। बोलो, अज्ञानी भारतवासी, निर्धन भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सभी मेरे भाई हैं। तुम कटिमात्र में वस्त्र लपेटकर गर्व से पुकारकर कहो, भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरा पालना, मेरे यौवन का उपवन और बुढ़ापे की काशी है। बोलो, भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है। भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है और रात-दिन कहते रहो – हे गौरीनाथ ! हे जगदम्बे ! मुझे मनुष्यत्व दो। माँ, मेरी दुर्बलता और कायरता दूर कर दो। मुझे मनुष्य बना दो।''[८]

आज सम्पूर्ण विश्व में भारत और भारतवासियों का गौरव और स्वाभिमान स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। हमारे सम्मुख विश्व-मंच पर विराजमान हो रहा है, स्वामी विवेकानन्द का सर्वसमृद्ध गौरवशाली समृद्ध भारत। हमें भारतवासी होने का गर्व है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. विवेकानन्द साहित्य ५/२०३ **२.** शक्तिदायी विचार, पृ.३२ **३.** विष्णुपुराण २/३/२४ **४.** भागवतपुराण **५.** वि.सा. ५/५ **६.** शक्तिदायी विचार, पृ.३३ **७.** वही, पृ.४१-४२ **८.**वि.सा. ९/२२८

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी विशेष

श्रीकृष्ण का शौर्य

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

सहा. प्राध्यापक, शा.दू.ब.महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर

शूर के भाव या कर्म को शौर्य कहते हैं।[१] शूर, वीर और विक्रान्त शब्द पर्यायवाची माने गये हैं।[२] काव्य के गुणों का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आलंकारिक आचार्यों ने बताया है कि आत्मा के शौर्यादि धर्मों के समान काव्य के आत्मभूत प्रधान रस के अचल स्थितिवाले और उत्कर्षाधायक धर्म हैं, वे गुण कहलाते हैं।[३] तात्पर्य स्पष्ट है कि शौर्य देह का नहीं, आत्मा का धर्म है। इसलिए उम्र अथवा दैहिक बल का शौर्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता। शौर्य की अभिव्यक्ति वाचिक और दैहिक, दोनों प्रकार की हो सकती है, किन्तु दैहिक क्रियाओं से रहित केवल वाचिक शौर्य आंशिक अथवा बहुधा हास्य बनकर रह जाता है। श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान हैं[४], समस्त गुणों के निधान हैं[५], सो उनके चरित्र में इस शौर्य धर्म के मूर्तिमान दर्शन होते हैं।

भक्तों का मन आकर्षित करने और प्रलयकाल में सबको अपने में समाहित करने के कारण भगवान 'कृष्ण' कहलाते हैं, पर साथ ही दुष्ट शत्रुओं को अपनी महान प्रभावकारी शक्तियों से नष्ट करने के कारण भी उनके 'कृष्ण' नाम की सार्थकता है।[६]

संसार का नियमन और दुष्टों का विनाश शौर्य के बिना संभव नहीं हो सकता। धर्म-रक्षा के लिए भगवान समय-समय पर अवतरित होकर अपने अतुल शौर्य का प्रदर्शन करके लोक की रक्षा करते रहते हैं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।[७]

भक्तों पर अनुग्रह और दुष्ट-विनाश की भगवान श्रीकृष्ण की कौतुक क्रीड़ाओं में उनके निम्नलिखित विविध प्रकार के शौर्य-दर्शन होते हैं –

दैहिक शौर्य – भगवान् श्रीकृष्ण शैशवदशा में ही थे कि कंस द्वारा भेजी गई राक्षसी पूतना परम सुन्दरी का रूप धारण कर उनके पास पहुँच कर स्नेह-दुलार दिखलाने लगी। माता यशोदा किसी कार्यवश जैसे ही वहाँ से हटीं, पूतना ने प्रभु को गोद में लेकर अपना विषयुक्त स्तन उनके मुख में डाल दिया। भगवान् ने दुग्ध-पान के बहाने इतने जोर से स्तन दबोचा कि तड़पती हुई पूतना भयानक क्रन्दन करने लगी और अन्ततः उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। इसी तरह औत्थानिक उत्सव में सब व्यस्त थे। शिशु श्रीकृष्ण ने रोदन आरम्भ किया। रोने की आवाज सुनकर भी जब कोई उनके समीप नहीं आया, तो पैर उछालकर उन्होंने शकटभंजन कर दिया। चक्रवातरूप तृणावर्त असुर गोकुल को धूलमय बनाकर श्रीकृष्ण को मारने की नीयत से उन्हें आकाश में लेकर उड़ गया। श्रीकृष्ण ने इतने जोर से उसकी गर्दन दबाई कि वह मरकर ब्रज की चट्टान पर गिरा और उसकी छाती से लटके हुए श्रीकृष्ण पूर्णतः सुरक्षित थे। माता यशोदा जब गृह-कार्य में व्यस्त थीं, तब उखल से बँधे हुये श्रीकृष्ण सरकते हुए दो अर्जुन वृक्षों के बीच में से प्रवेश कर दूसरी ओर निकल गए और उखल अटक गया। श्रीकृष्ण ने कमर में लगी रस्सी को इतनी जोर से खींचा कि दोनों पेड़ उखड़ गए और इस तरह वृक्ष बने कुबेर के दोनों पुत्रों (नलकूबर, मणिग्रीव) को शाप-मुक्त कर दिया।

यमुना तट पर गोचारण काल में दैत्य वत्सासुर बछड़ा

रूप धारण कर समूह में आ मिला। उसकी कुत्सित चेष्टा से विदित कृष्ण ने पूँछ सहित दोनों पैर पकड़ आकाश में घुमाते कैथ के वृक्ष पर पटक कर उस दैत्य को मार डाला। एक दिन जलाशय में बछड़ों को जल पिलाते समय विशाल बगुले का रूप बनाये कंस-मित्र बकासुर ने सहसा कृष्ण को निगल लिया। तालु के नीचे पहुँचकर श्रीकृष्ण उसे आग के समान जलाने लगे, तो बगुले ने उन्हें उगल दिया। फिर उन्होंने उसकी चोंच चीरकर मार डाला। कंस द्वारा भेजे गये एक योजन विस्तृत अजगर रूपी अघासुर ने श्रीकृष्ण के सभी सखा गोपालों और गायों को निगल लिया। तब भगवान उसके मुख में समा गये और गले में पहुँचकर इतने विशालकाय हुए कि गला रूँधने से अजगर बना दैत्य मर गया और श्रीकृष्ण ने अमृतमय दृष्टिपात से सब गो-गोपालों को जीवित कर सुरक्षित बाहर निकाल लिया। इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने बैलरूपी अरिष्टासुर, अश्वरूपी केशीदैत्य गोपवेषधारी व्योमासुर का वध किया और कालिय नाग का दमन किया।

श्रीकृष्ण के परामर्श से इन्द्र देव के पूजनोत्सव के बदले जब ब्रजवासियों ने गोधन और गिरिराज का यजन आरम्भ किया, तब क्रोधित हुए इन्द्र देव ने भयानक मूसलाधार वर्षा आरम्भ कर दी। समस्त ब्रजवासी प्रलय-सी दुःस्थिति देख भय-प्रकम्पित हो उठे। तब ७ वर्षीय कृष्ण ने ७ दिनों तक अपनी कनिष्ठिका अंगुली पर गिरिराज पर्वत को छत्र के समान धारण कर सबकी रक्षा की।

श्रीकृष्ण जब मथुरा गये, तब भयानक हाथी कुवलयपीड को मारकर मल्लक्रीड़ा महोत्सव में प्रवेश किया, मल्लयुद्ध का प्रस्ताव स्वीकार कर चाणूर, शर, तोशल को मारा और अन्त में सहसा मंच पर उछलकर, आततायी कंस को दबोचकर मार डाला।

करुष देश का राजा पौण्ड्रक श्रीकृष्ण की पूरी नकल करते हुए स्वयं को ही कृष्ण समझता, बोलता था। नकल के उन्माद में उस पौण्ड्रक ने भगवान कृष्ण के पास दूत से संदेश भेजा – प्राणियों पर कृपा करने अवतरित भगवान वासुदेव अकेला मैं ही हूँ, दूसरा कोई नहीं। तो तुम मूर्खतावश मेरे धारण कर रहे चिह्नों को त्यागकर मेरी शरण में आ जाओ या फिर मुझसे युद्ध करो। यह सुनकर सभा में सब हँसने लगे। भगवान् कृष्ण ने प्रत्युत्तर भिजवाया – मैं अपने चिह्न छोड़ूँगा, पर तुझ पर ही छोड़ूँगा। फिर उन्होंने काशी में विद्यमान पौण्ड्रक पर हमला कर दिया। उसका मित्र काशीराज भी सहायतार्थ अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध में आया। अक्षौहिणी सेना युक्त नकलची पौण्ड्रक को शंख, चक्र, गदा, तलवार, शार्ङ्ग धनुष, श्रीवत्स-चिह्न, कौस्तुभ, वनमाला, पीतवस्त्र और गरुड़ध्वज धारण किये देख श्रीकृष्ण खिलखिलाकर जोर से हँस पड़े और कहा कि लो मैं अपने अस्त्र तुम पर छोड़ रहा हूँ। यह कहकर भगवान ने उसका मस्तक चक्र से काट दिया और काशीराज को भी मारकर द्वारका लौट गए।

श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ रहते शिशुपाल के मित्र शाल्व ने सौभ विमान से द्वारका पर आक्रमण किया। प्रद्युम्न २७ दिनों तक उससे लड़ते रहे। द्वारका आकर श्रीकृष्ण शाल्व से युद्ध करने लगे। शाल्व जब उन्हें बार-बार मारने की धमकी देने लगा, तब श्रीकृष्ण ने कहा कि वीर लोग बातें नहीं बनाते, बल्कि पौरुष दिखलाया करते हैं।[८] तदनन्तर उन्होंने तरह-तरह की माया रचनेवाले शाल्व का सिर सुदर्शन से काट डाला।

प्रातिभ शौर्य – जब कालयवन ने ३ करोड़ सेना सहित मथुरा पर आक्रमण किया, तब श्रीकृष्ण ने द्वारका नगरी बसाकर सबको भेज दिया और स्वयं जान-बूझकर कालयवन को दीखते हुए पलायन कर एक गुफा में प्रवेश कर गये, जहाँ मुचुकुन्द सो रहे थे। मुचुकुन्द के ऊपर अपना उत्तरीय डाल श्रीकृष्ण एक ओर छिप गये। पीछे-पीछे दौड़ता हुआ कालयवन भी गुफा में प्रवेश किया और सो रहे मुचुकुन्द को श्रीकृष्ण समझ चरण-प्रहार कर दिया। प्रहार से बाधित मुचुकुन्द के दृष्टिपात से कालयवन जलकर भस्म हो गया, क्योंकि उसे देवताओं से वर प्राप्त था कि जो कोई भी उसकी निद्रा में बाधा डालेगा, वह दृष्टिपात मात्र से भस्म हो जायेगा। इस प्रकार बिना युद्ध किये श्रीकृष्ण ने प्रातिभ शौर्य से कालयवन का विनाश किया और वापस लौटकर उसकी सेना का भी संहार कर दिया।

इसी प्रकार श्रीकृष्ण के संकेत-शौर्य के कारण ही भीम मगधराज जरासन्ध से युद्ध करते समय उसके शरीर को चीरकर दोनों टुकड़े विपरीत दिशाओं में फेंक कर मारने में सफल हो सके और दुर्योधन से गदा-युद्ध के समय जांघों पर प्रहार कर उसके प्राण हर सके थे।

नैतिक शौर्य – श्रीकृष्ण गरुड़ पर सवार हो सत्यभामा के साथ प्राग्ज्योतिषपुर गए। मुर को सात पुत्रों सहित मारकर

पृथ्वी पुत्र भौमासुर को मारा और उसके द्वारा बन्दी बनायी गयी १६००० हजार राजकुमारियों को द्वारका लाकर इसलिए उन सबसे विवाह किया कि समाज में उन्हें सम्मानित स्थान प्राप्त हो सके।

औचित्यशौर्य – जब दुर्योधन ने वनवास की अवधि पूर्ण कर लौटे हुए पाण्डवों को बिना युद्ध राज्य देने से मना कर दिया, तब श्रीकृष्ण ने सन्धि-प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने का निश्चय किया। इस कार्य से युधिष्ठिर के मना करने पर उन्होंने कहा कि भले ही दुरात्मा दुर्योधन उनकी बात नहीं मानेगा, लेकिन युद्ध से पूर्व उसे शान्ति और समझौते का समुचित परामर्श देना उनका नैतिक कर्तव्य है, जिससे हम सभी संसार में किसी की दृष्टि में कभी निन्दा के पात्र नहीं बनेंगे।

कृपाशौर्य – जुए में हारने के बाद भरी सभा में जब दु:शासन ने द्रौपदी का वस्त्र खींचना आरम्भ किया और पूरी सभा मूक दर्शक बनी यह दानवीय कृत्य देखती रही, तब बिलखती हुई असहाय द्रौपदी पर दूरस्थ श्रीकृष्ण ने शील-रक्षार्थ ऐसा कृपा-शौर्य किया कि वस्त्र अनन्त हो गया।

कपटी दुर्योधन के अनुनय से जब दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यों सहित भोजन करने पांडवों के पास गये, तब भोजन समाप्त होने के कारण सब महर्षि के कोप से चिन्तातुर हो उठे। इस आपदा में द्रौपदी ने श्रीकृष्ण का स्मरण किया। श्रीकृष्ण ने तत्काल पहुँचकर भोजन पात्र में बचे कण को ग्रहण कर ऐसा कृपा-शौर्य किया कि स्नान करने गये दुर्वासा शिष्यों सहित इतने तृप्त हो गये कि भोजन करने वापस नहीं आये और पाण्डवों की विपदा टल गई। इसी तरह जब दरिद्रता से तंग पत्नी के परामर्श से सुदामा श्रीकृष्ण के महल पहुँचे, तब उन्होंने अपने बाल-सखा का खूब आदर-सत्कार किया। बहुत प्रयत्न के बाद भी संकोचवश सुदामा अपने सखा से धन-याचना किये बिना घर लौट आये। श्रीकृष्ण ने भी विदाई में कुछ नहीं दिया। लेकिन लौटकर सुदामा ने देखा कि वे अपने अन्तर्यामी सखा के कृपा-शौर्य से समस्त सुख-सुविधाओं से युक्त राजमहल के धनाढ्य स्वामी बन चुके हैं।

भागवतशौर्य – श्रीकृष्ण ने अपने भागवत शौर्य से यमुना के विषैले जल से मृत गायों और गोप-गोपबालों को दृष्टिपात मात्र से पुनर्जीवित कर दिया और गोचारणक्रम में मुंजाटवी दावानल से उन सबकी रक्षा की।

उज्जैन में सांदीपनि से सारी विद्याएँ प्राप्त करने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने गुरु-दक्षिणा देने की कामना व्यक्त की। श्रीकृष्ण की महिमा से सुपरिचित आचार्य सांदीपनि ने उन्हें समुद्र में डूबकर मरा पुत्र लाने को कह दिया। श्रीकृष्ण प्रभास क्षेत्र में समुद्र के समीप गये। समुद्र के कथन से पञ्चजन नामक शंखरूपी दैत्य को मारा, किन्तु उसके पेट में गुरुपुत्र को न पाकर यमुपुरी जाकर शंख-वादनकर यमराज से माँगा और पुत्र को जीवित कर गुरु को दक्षिणा देकर कृतार्थ किया। इसी प्रकार देवकी माता ने जब अपने मृत छह पुत्रों को देखने की बात कही, तब श्रीकृष्ण ने सुतल लोक जाकर राजा बलि से भेंटकर कंस द्वारा मारे हुए अपने छह भाइयों को लाकर माता देवकी के सम्मुख खड़ा कर दिया।

विज्ञानशौर्य – कुरुक्षेत्र में जब पांडव-कौरव, दोनों पक्ष की सेनायें युद्ध के लिए एक-दूसरे के सामने खड़ी थीं, तब समरांगण में पहुँचे अर्जुन विपक्षियों में अपने सारे स्वजनों को देखकर मोह-ग्रस्त हो गये और विषण्ण होकर उन्होंने युद्ध करने से मना कर दिया। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें कर्तव्य-पालन का ज्ञान-विज्ञान-सम्मत उपदेश किया।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं में शौर्य के विविध रूप भक्तों के मन मोह लेते हैं। असत् नाश में, अनुग्रह में, वात्सल्य में और सन्तों के संरक्षण में शौर्य ही शौर्य है –

असन्नाशे कृपाशौर्यं वात्सल्यं साधुरक्षणे।
शौर्यं विहाय कृष्णस्य न किंचिदवशिष्यते।।

जो भगवान श्रीकृष्ण समस्त भूतों में शौर्य रूप में अवस्थित हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है –

यो देवः सर्वभूतेषु शौर्यरूपेण संस्थितः।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै श्रीकृष्णाय नमो नमः।।

○○○

सन्दर्भ सूत्र : १. शूरस्य भाव; कर्म वा इति शौर्यम्। शूरयति विक्रामति इति शूरः। – हलायुधकोश **२.** शूरो वीरश्च विक्रान्तः। अमरकोश **३.** ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः। उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।। काव्य प्रकाश ८.६६ **४.** कृष्णस्तु भगवानस्वयम्। भागवतपुराण १.३.२८ **५.** (क) तेजोबलैश्वर्यमहावबोध-सुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः। विष्णुपुराण ६.५.८५ (ख) समस्त शक्तिः परमेश्वराख्यं। विष्णुपुराण। ६.५.८६ **६.** कर्षति अरीन् महाप्रभावशक्तया। यद्वा कर्षति आत्मसात्करोति मनो भक्तानाम्। यद्वा कर्षति सर्वान् स्वकुक्षौ प्रलयकाले। कर्षणात् कृष्णः। शब्दकल्पद्रुम **७.** भगवद्गीता ४.७,८ **८.** पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः। भागवतपुराण १०.७७.१९.

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी विशेष

भगवान श्रीकृष्ण की दिनचर्या का लौकिक और पारलौकिक महत्त्व

राजकुमार गुप्ता, वृन्दावन

श्रीमद्भागवत पुराण के दसम स्कंध के अध्याय ६९ व ७० में भगवान की दिनचर्या का वर्णन है। देवर्षि नारदजी को उत्सुकता हुई कि १६,१०८ रानियों में भगवान श्रीकृष्ण किस तरह सामंजस्य बैठाते हैं। गृह क्लेश इत्यादि तो नहीं होता? यही देखने के लिए नारदजी द्वारिका में आये तथा भगवान के १६,१०८ महलों में जा-जाकर वहाँ की चर्या देखी। द्वारिका नगरी सुख-समृद्धि का मूर्तिमान स्वरूप ही थी। उसकी एक-एक वस्तु महल, राजमार्ग, उद्यान, तालाब आदि विश्वकर्मा ने सुरुचिपूर्ण ढंग से रचे थे। यह पुरी वास्तुकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण थी।

मानव जीवन का एक मात्र उद्देश्य है कि वह इसी जीवन में मृत्यु आने से पूर्व ही अपना परलोक सुधारने का साधन कर ले। श्रीमद्भागवत के अनुसार मनुष्य को येन केन प्रकारेण भगवान से सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिए। नाम-जप से, पूजा-अर्चना से अथवा अन्य साधन से भगवान का स्मरण हर समय बना रहे, यही मानव-जीवन की सफलता है। भगवान की दिनचर्या भी भागवतकार ने इसीलिए रखी है कि जितने समय तक इसका पठन-पाठन करेंगे, चिन्तन भगवन्मय रहेगा। सामान्य व्यक्तियों को इसमें मन लगाना स्वाभाविक है, क्योंकि ज्ञान, विज्ञान की बातें प्राय: सामान्य लोगों को रुचिकर नहीं लगतीं। घर-गृहस्थी की बातों में स्वाभाविक रुचि होती है। तो यहाँ घर-गृहस्थी की सामान्य बातों के माध्यम से भगवत्-स्मरण को जोड़ा गया है। इस प्रकार यह प्रसंग भगवत्-स्मरण कराने के साथ-साथ गृहस्थ-जीवन में सुख, शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है, यह लाने का सार्थक प्रयास है। आइये, श्रीमद्भागवत के इस प्रसंग पर दृष्टि डालते हैं।

देवर्षि नारदजी ने भगवान की एक पत्नी रुक्मिणीजी के महल में प्रवेश किया। वहाँ पर भगवान को रुक्मिणीजी के साथ बैठे देखा। हालाँकि सहस्त्रों दासियाँ वहाँ थीं, फिर भी रुक्मिणीजी स्वयं भगवान को पंखा झल रही थीं। नारदजी को देखते ही भगवान ने खड़े होकर उनका स्वागत किया, आसन पर बैठाया, चरण पखारे, चरण-जल सिर पर धारण किया तथा पूछा कि आप तो स्वयं में ही पूर्ण हैं। हम आपकी क्या सेवा करें। देवर्षि नारदजी भगवान की प्रशंसा करके दूसरी पत्नी के महल में गये। वहाँ जाकर देखा कि भगवान अपनी प्रिया के साथ चौसर खेल रहे हैं। वहाँ भी भगवान ने नारदजी का उठकर स्वागत किया। आसन पर बैठाया व बड़े भक्ति-भाव से पूजा की तथा फिर वही प्रार्थना कि हे देवर्षि आप तो पूर्ण काम हैं। फिर भी हमें कुछ सेवा करने की आज्ञा दीजिए। जिससे हम आपकी सेवा कर अपना जीवन सफल बना सकें।

अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मन् जन्मैतच्छोभनं कुरु।।

(१० स्कंध ६९ अध्याय श्लोक २२ का पूर्वार्ध)

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भगवान स्वयं संतों का कितना आदर करते हैं। इस प्रकार का व्यवहार मनुष्य को घर पर ही सत्संग प्रदान कर देता है। संत स्वयं बेझिझक उसके पास चले आते हैं। उससे जीवन का प्रथम पुरुषार्थ सत्संग, जो भगवत्-प्रेम प्राप्त करने का प्रथम सोपान है, सहज ही प्राप्त हो जाता है।

कितने ही व्यस्त रहो, परिवारजनों के साथ प्रतिदिन कुछ समय बिताओ। इससे परिवार में एकता, प्रेम व सामंजस्य बना रहता है तथा परिवार टूटने की जो समस्या है, उससे सहज ही मुक्ति मिल जायेगी।

उसके बाद नारदजी एक-एक करके भगवान की अन्य पत्नियों के महलों में भी गये। वहाँ भगवान की जो चर्यायें देखीं, उसका कुछ दिग्दर्शन प्रस्तुत है। कहीं भगवान बच्चों

को दुलार रहे हैं। कहीं स्नान की तैयारी कर रहे हैं। कहीं यज्ञ-कुण्ड में हवन कर रहे हैं। कहीं पंच महायज्ञों से देवताओं की आराधना कर रहे हैं। कहीं ब्राह्मणों को भोजन करा रहे हैं। कहीं स्वयं यज्ञ-शेष का भोग लगा रहे हैं। कहीं संध्या कर रहे हैं। कहीं मौन होकर गायत्री का जप कर रहे हैं। कहीं तलवारबाजी का अभ्यास कर रहे हैं। कहीं घोड़े-हाथी इत्यादि पर सवार होकर विचरण कर रहे हैं। कहीं पलंग पर सो रहे हैं, तो कहीं मंत्रियों के साथ किसी गम्भीर विषय पर परामर्श कर रहे हैं। कहीं ब्राह्मणों को दान कर रहे हैं, तो कहीं मंगलमय इतिहास-पुराणों का श्रवण कर रहे हैं। कहीं धन-वृद्धि के कार्य में लगे हैं, तो कहीं गृहस्थोचित भोगों को भोग रहे हैं। कहीं एकान्त में बैठकर प्रकृति से परे पुराण पुरुष का ध्यान कर रहे हैं। कहीं गुरुजनों की सेवा कर रहे हैं। कहीं युद्ध की चर्चा कर हैं, तो कहीं सन्धि की बात कर रहे हैं।

कुत्रचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः।
इतिहासपुराणानि शृण्वन्तं मंगलानि च।।

(१०/६९-२८ भागवत)

ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम्।
शुश्रूषन्तं गुरून् क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया।।

(१०/६९-३०)

श्री नारदजी ने देखा कि कहीं भगवान पुत्र-पुत्रियों के विवाह-उत्सव बड़ी धूमधाम से कर रहे हैं। कहीं किसी पुत्री को विदा कर रहे हैं। कहीं बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा देवताओं का पूजन कर रहे हैं। कहीं कुछ बगीचे अथवा धर्मशाला बनवा रहे हैं। कहीं वेष बदलकर छिपकर सबका अभिप्राय जानने के लिए विचरण कर रहे हैं। जहाँ भी नारदजी गये, भगवान ने उनका बड़ा स्वागत किया। भगवान का ऐश्वर्य १६,१०८ रूप बनाकर एक साथ सब पत्नियों के महलों में रहना देखकर नारदजी विस्मित हो गये। वे प्रसन्न होते हुए वाटिका से चले गये।

भगवान की उपयुर्क्त दिनचर्या देखकर सहज ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हर व्यक्ति को अपने लौकिक एवं पारलौकिक कर्तव्यों का बड़ी सावधानी से पालन करना चाहिए। यह दिनचर्या संत श्रीनारद जी की दृष्टि से है। देवर्षि नारदजी को देव-दर्शन विशेषण से विभूषित किया गया है अर्थात् जिसे नारद का दर्शन हुआ, भगवान अवश्य मिले। इसलिए अपने व्यस्त जीवन में से कथा-श्रवण-कीर्तन, नित्य नैमित्तिक हवन करना, जितनी सामर्थ्य हो अच्छे उद्देश्यों के लिए दान करना, अन्नदान करना तथा प्रतिदिन कुछ समय एकान्त में बैठकर भगवान का ध्यान करना, सबके लिए आवश्यक है। यह भगवान ने स्वयं करके दिखाया है।

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अध्याय ७० में भी भगवान की नित्यचर्या की चर्चा है। देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है, उपरोक्त चर्या अवकाश वाले दिन की है आगे अध्याय ७० की चर्या कार्य-दिवस की चर्या है। इसका भी अवलोकन करते हैं –

भगवान प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में उठकर हाथ-मुँह धोकर आत्म-स्वरूप का ध्यान करते। उसके बाद स्नान आदि से निवृत्त होकर स्वच्छ वस्त्र धारण कर सन्ध्या-वन्दन, हवन, गायत्री जप करते। यह सब सूर्योदय पूर्व ही कर लेते। सूर्योदय होने पर गुरुजनों को प्रणाम करते। आभूषण पहन कर तैयार होकर देव-प्रतिमाओं का दर्शन करते। चन्दन, पुष्पमाला इत्यादि ब्राह्मणों, स्वजनों, मुनियों को बाँटकर स्वयं भी उपभोग करते। फिर रथ पर सवार होकर सुधर्मा सभा में जाते। सुधर्मा सभा में भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा-मृत्यु-वर्ण का प्रकोप नहीं होता। वहाँ पर संगीत, नृत्य देखते। कभी-कभी कोई विद्वान ब्राह्मण वेद मन्त्रों की ऋचाएँ सुनाता तो सुनते अथवा श्रेष्ठ राजाओं के चरित्रों का कथन, श्रवण होता।

इससे स्पष्ट है कि कार्यक्षेत्र में कर्मचारियों के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रखने का प्रबन्ध होना चाहिए, तभी वे पूरी तन्मयता से कार्य करेंगे। उनका मानसिक सन्तुलन ठीक रहे, इसके लिए स्वस्थ्य मनोरंजन एवं नैतिकता, आध्यात्मिक से सम्बन्धित कार्यक्रम भी होने चाहिए। प्रात: ब्रह्ममुहूर्त से लेकर खेल, गाने इत्यादि का महत्त्व स्वयं ही प्रकट हो रहा है।

एक दिन जरासंध द्वारा बन्दी बनाये गये २००० राजाओं का दूत आया। उसने भगवान से उन राजाओं का सन्देश, जो उनलोगों ने जरासन्ध से अपनी मुक्ति की प्रार्थना की थी, कह सुनाया। तभी ऋषि नारदजी ने आकर बताया कि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ द्वारा आपकी आराधना करना चाहते

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (२५)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

श्रीरामकृष्ण उवाच

तच्छिवोऽहं शिवोऽहं नु केवलं करणेन किम्।

यदा तं सच्चिदानन्दं ध्यात्वा तु हृदये शिवम्।।३६।।

केवलं तदवस्थायां तत् कथनाय युज्यते।

तच्छिवोऽहं शिवोऽहं तु वक्त्रोद्भूतेन किं भवेत्।। ३७।।

श्रीरामकृष्ण ने कहा – जब उस सच्चिदानन्द शिव का हृदय में ध्यानकर, उसमें तन्मय होकर उसकी हृदय में अनुभूति करता है, तभी यह कहना उचित है, अन्यथा केवल मुख से 'शिवोऽहं शिवोऽहं' बोलने से क्या होगा?

शिवोऽहमिति संत्यज्य प्राप्तो यावन्न सा दशा।

सेव्य-सेवक-भावेन तावत् स्थितिः सदा वरम्।।३८।।

– जब तक वह अवस्था प्राप्त न हो जाय, तब तक (शिवोऽहं भाव का त्याग कर) सेव्य-सेवक भाव ही अच्छा है।

श्रीमहाराज उवाच

लब्धचेतन एवाभुदूपदेशेन हि प्रभोः।

नानैवं ब्रह्मचारी स वुवुधे स्वभ्रमं किल।।

यात्राकाले लिलेखाथ भित्तिगात्रे च तत्र वै।।३९।।

अद्यतः स्वामिवाक्येनायं रामचन्द्रनामक :।

ब्रह्मचारी तु सम्प्राप्तः सेव्य-सेवक-भावनम्।।४०।।

।।ओमिति श्रीरामकृष्णगीतासु धर्मोपलब्धव्यवस्तु नाम सप्तमोऽध्यायः।।

श्रीमहाराज ने कहा – ठाकुर के इस प्रकार के उपदेश से ब्रह्मचारी को चैतन्य हो गया एवं उन्हें अपने भ्रम का बोध हो गया। वे जाते समय दीवार पर लिखकर गये – स्वामी की वाणी से आज यह रामचन्द्र नामक ब्रह्मचारी सेव्य-सेवक-भाव को प्राप्त हुआ।

ॐ श्रीरामकृष्ण गीता का धर्म उपलब्धि-वस्तु नामक सातवाँ अध्याय समाप्त।। **(क्रमशः)**

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

हैं। आप कृपा करके उनकी अभिलाषा का अनुमोदन कीजिए।

सभा में बैठे सभी यदुवंशी चाहते थे कि पहले जरासंध को आक्रमण करके जीता जाये। भगवान सर्वज्ञ हैं, फिर भी इस सम्बन्ध में उद्धवजी की सलाह पूछी। उद्धवजी ने कहा कि राजसूय यज्ञ बिना जरासंध को जीते हो जाये। इसके लिए भीमसेन ब्राह्मण वेष में आकर युद्ध की भिक्षा जरासंध से माँगे एवं आपकी सहायता से इसे द्वन्द युद्ध में जीत लें।

यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि भगवान ने उद्धवजी की राय लेकर सबको अपने अभियान के लिये राजी कर लिया। यदि अपनी राय थोपते, तो यदुवंशी वीर पूरे मन से अभियान में सम्मिलित न होते। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि सबको निर्णय लेने में सम्मिलित करना चाहिये, जिससे वे उस कार्य को अपना मानकर पूर्ण निष्ठा से करें। एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट करना चाहूँगा। एक लड़का ४ वर्ष का हो गया। फिर भी अक्सर रात को बिस्तर गीला करता था। डॉक्टरों ने जाँच करने पर उसके शरीर में कोई कमी नहीं पायी। तब मनोचिकित्सक के पास ले गये। मनोचिकित्सक ने राय दी, इसे अपना पायजामा स्वयं खरीद कर लाने दो। ऐसा ही किया गया। नया स्वयं खरीदा पायजामा पहनकर लड़का मनोचिकित्सक के पास गया। वह पायाजामा खरीद कर बहुत खुश था व गर्व महसूस कर रहा था। डॉक्टर ने कहा, तुम इस पायजामा को गीला नहीं करोगे। इतना कहने से ही उसकी बिस्तर गीला करने की आदत छूट गई। भगवान के चरित्र अनन्त हैं, पर हैं सब भक्तों के कल्याणार्थ। आशा है आप भगवान की दिनचर्या से लाभ उठायेंगे। ○○○

रामगीता (२/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

एक बार प्रभु सुख आसीना।
लछिमन बचन कहे छलहीना।।
सुर नर मुनि सचराचर साईं।
मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं।।
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा।
सब तजि करौं चरन रज सेवा।।
कहहु ग्यान बिराग अरु माया।
कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया।। ३/१३/५-८
ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाई।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ।। ३/१४/०

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज, समुपस्थित संतों और ब्रह्मचारियों के चरणों में मेरा शत शत नमन् है। आप सब श्रोता जो श्रद्धा और जिज्ञासा के मिश्रित भाव से यहाँ एकत्र हुए हैं, उनको भी नमन है। अभी श्रद्धेय स्वामीजी ने कल की कथा का संक्षेप कैसी अद्भुत पद्धति से किया। यह तो उनकी विनम्रता है, संत-स्वभाव है, इसलिए उन्होंने यह कह दिया कि जितना मैं समझ पाया। पर वस्तुत: इस बार श्रद्धेय स्वामीजी ने जो प्रश्न चुने हैं, वे अत्यन्त गम्भीर हैं और विशेषरूप से उनके लिए अत्यन्त उपयोगी हैं, जो जीवन का लक्ष्य केवल व्यवहार तक सीमित नहीं मानते।

एक साधारण व्यक्ति और वैज्ञानिक में क्या अन्तर है? साधारण व्यक्ति पूरा जीवन खाता है, पीता है, भौतिक अर्थों में उन्नति भी करता है, उच्च पद भी प्राप्त कर लेता है और वह यह मानता है कि उसका जीवन सार्थक है और वह जीवन को अपने आप में जी लेता है। पर जिसे हम वैज्ञानिक कहते हैं, वह इतने से सन्तुष्ट नहीं हो जाता, उसकी दृष्टि इतनी सीमित ही नहीं होती, वह सारे आकाश की ओर, ग्रह-नक्षत्र-तारों की ओर, ब्रह्माण्ड की ओर देखता है और स्वभावत: उसके अन्त:करण में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह जो दिखाई दे रहा है, यह क्या है? कैसे है? इनका निर्माण कैसे हुआ? इसी सन्दर्भ में वह प्रकृति और विज्ञान की खोज करता है। आप देखते हैं कि आज के युग में जो विज्ञान के अद्भुत चमत्कार आपके सामने आते हैं, वह ऐसे ही वैज्ञानिकों की प्रतिभा का परिणाम है। वे चाहते तो सहज भाव से जीवन व्यतीत कर लेते, जैसे लाखों-करोड़ों व्यक्ति कर लेते हैं। पर उनकी जिज्ञासा वृत्ति ने उन्हें और भी ऊपर उठने, समझने की प्रेरणा दी और उन्होंने ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझने का प्रयास किया।

हम जिस सनातन धर्म के अनुगामी हैं, वह व्यावहारिक पक्ष को महत्त्व तो देता है, देना ही होगा, जिस विश्व में जिस समाज में, जिस परिवार में हम रह रहे हैं, उनके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, इसका महत्त्व तो है ही, पर वस्तुत: जीवन केवल इतना ही नहीं है। इससे भी आगे कुछ है। इसीलिए जब चार फलों की बात कही गई, पुरुषार्थ के चार फल माने गये, तो उसमें अर्थ का नाम दिया गया और वह स्वाभाविक है। जीवन में पग-पग पर धन की आवश्यकता होती है। इसीलिए व्यक्ति पुरुषार्थ करते हुए अर्थ पाना चाहता है। अर्थ के साथ-साथ व्यक्ति के जीवन में सुख पाने की एक वृत्ति है, जो उसके संस्कार में है। किन्तु वह सोचता है कि भोगों में ही सुख है और उसकी पूर्ति के लिए वह काम का आश्रय लेता है। काम भी एक शास्त्र है। काम भी चतुर्वर्ग में, चार फलों में एक फल है। उसका भी महत्त्व है। तीसरा फल धर्म है। धर्म ठीक ऐसे एक केन्द्र में स्थित

है कि एक ओर तो वह समाज के व्यावहारिक पक्ष को समझने और उसको अपने जीवन में उतारने की प्रेरणा देता है। उस धर्म का जो एक विशेष परिणाम है, उस परिणाम का नाम मोक्ष है। मोक्ष पाने की अभिलाषा तो व्यक्ति में बहुधा होती ही नहीं, जिज्ञासा भी नहीं होती है, लेकिन धर्म का यह परिणाम होना चाहिए कि धर्म का पालन करते हुए भी उसमें जिज्ञासा का उदय हो और वह मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करे। मोक्ष शब्द सुनकर व्यक्ति ऐसी धारणा बना लेता है और ऐसी धारणा बनाने वाले ही अधिक हैं कि जब व्यक्ति की मृत्यु होगी, तो मृत्यु के बाद कुछ लोग नरक में जाएँगे, कुछ लोग स्वर्ग में जाएँगे और कुछ लोग ऐसे होंगे, जिनका जन्म नहीं होगा, यह मोक्ष है। यह उसकी एक व्यावहारिक व्याख्या है। पर मनुष्य की जो एक समग्रता है, उस दृष्टि से व्यक्ति यदि विचार करेगा, तो उसकी जिज्ञासा वृत्ति में ऐसे प्रश्न आयेंगे। इसीलिए जो चौपाइयाँ अभी आपके सामने पढ़ी गई हैं, ये प्रश्न श्रीलक्ष्मण ने किए हैं। अब एक अन्तर आप देखेंगे, श्रीभरत महानतम भक्त हैं, प्रेम और श्रद्धाभाव के घनीभूत रूप हैं, पर उन्होंने भगवान राम से वे प्रश्न नहीं किए, जो लक्ष्मणजी ने किए। बहुत बुद्धिमान श्रोताओं से थोड़ा डरता भी हूँ, उसका अन्यथा अर्थ न ले लें, पर उसका एक तात्पर्य भी है कि श्रीभरत ने भी श्रीराम से प्रश्न किए अयोध्याकाण्ड के अन्त में और अरण्यकाण्ड में लक्ष्मणजी ने श्रीराम से प्रश्न किए। दोनों प्रश्नों में एक अन्तर है और दोनों को मिलाकर देखने पर समग्रता का आपको अनुभव होगा। श्रीभरत के जितने प्रश्न थे, वे व्यावहारिक थे। व्यवहार का साधारण महत्त्व नहीं है। इसलिए यह स्वाभाविक था कि भगवान श्रीराम ने श्रीभरत को अयोध्या के राज्य संचालन का भार सौंपा। स्वाभाविक है, उन्हें जो भार सौंपा गया, वह कर्तव्य कर्म, राजा और प्रजा का सम्बन्ध, उसके क्या कर्तव्य हैं, कैसे राजा के द्वारा प्रजा की सेवा और उसकी रक्षा की जानी चाहिए, ये प्रश्न आप श्रीभरत के द्वारा सुनेंगे। श्रीभरत भगवान राम से कहते हैं, प्रभु ! आपने अयोध्या और प्रजा की सेवा का भार मुझे सौंपा है, तो आप कृपा करके मुझे यह बताइए कि राजा का क्या कर्तव्य है? यह सर्वथा स्वाभाविक है। जिसको राज्य चलाना है, उसको तो यह समझना ही चाहिए। यह जानते हुए कि भरत महान चरित्रवान हैं, भगवान श्रीराम उन्हें उपदेश देते हैं। आपने पढ़ा होगा कि भरतजी ने जिज्ञासा की कि राजनीति का क्या रहस्य है, क्या स्वरूप है? तो भगवान राम ने वहाँ पर भी बहुत थोड़े शब्दों में सूत्र रूप में भरतजी के सामने रख दिए। वे जानते थे कि भरत को अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं है। जब भरतजी ने पूछा कि राजनीति क्या है? भगवान राम ने कहा, भरत, बस

राजधरम सरबसु एतनोई।
जिमि मन माहँ मनोरथ गोई।। २/३१५/१

भगवान श्रीराम ने यह कहा कि जैसे किसी के मन में क्या है, यह समझना दूसरे के लिए असम्भव है, कठिन है, वैसे ही श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ वह है, जो अपने मन के रहस्य को, मन के संकल्प को लोगों के समक्ष प्रदर्शित करने की चेष्टा न करे। गुप्त रूप से उसके अन्त:करण में वह संकल्प होना चाहिये। उसको आप यों देख लें, जैसे आप वृक्ष लगाते हैं, तो बीज जो होता है, वह धरती के भीतर होता है। उस बीज के द्वारा जो वृक्ष होता है, वह कितना विशाल हो जाता है ! भगवान राम ने राजनीति का यह सूत्र दिया। उसकी व्याख्या का इस समय अवसर नहीं है। इसी प्रकार से जब श्रीभरत ने पूछा, राजा का क्या कर्तव्य है, तो उन्होंने कहा –

मुखिया मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।।
२/३१५/०

प्रभु श्रीरामचन्द्र ने कहा, राजा को, जो प्रधान है, उसके मुख की तरह होना चाहिए। जैसे शरीर में जितने अंग हैं, उन अंगों को रक्त की, शक्ति की आवश्यकता है। उसके लिये जो भोजन किया जाता है, वह मुख के द्वारा ही तो किया जाता है। पर मुख के द्वारा किए जाने पर भी मुख क्या करता है? अगर आप बहिरंग विभाजन करें, तो कह सकते हैं कि प्रत्येक अंग को हम अलग-अलग खिलाने की चेष्टा करें। पर आप अगर केवल मुख में सारे विविध प्रकार के भोज्य और नाना प्रकार के पदार्थ डालते हैं, तो यह मानकर डालते हैं कि मुख अकेले ही उन सब पदार्थों को अपने पास नहीं रखेगा। कैसी प्रक्रिया है ! दाँत और जिह्वा के द्वारा भोजन अन्दर जाता है। कितना सांकेतिक स्वरूप! दाँत कठोर है, जिह्वा कोमल है और भोजन को भीतर पहुँचाने के लिये दोनों की अपेक्षा है। वह दाँत की कठोरता के द्वारा चर्वण करता है और कोमल जिह्वा भोजन को एक ऐसा रूप प्रदान करती है कि वह गले से नीचे उतरकर पेट में चला जाता

है। वह भोजन भीतर जाकर सारे अंग-प्रत्यंगों को शक्ति देता है। प्रभु का तात्पर्य यह था कि राजा जो कुछ कर के द्वारा या अन्य किसी रूप में एकत्र करता है, उसे सारी प्रजा में सारे समाज में वितरित करे। भले ही ऐसा दिखाई दे रहा है कि वे वस्तुएँ राजा के पास एकत्र हैं। तो भगवान श्रीराम ने श्रीभरत को राजनीति की और धर्म की शिक्षा दी। धर्म की शिक्षा देते हुए कहा कि सबसे बड़ा धर्म पिता की आज्ञा का पालन करना ही है। भरत ! हमलोगों का यही कर्तव्य है कि हम दोनों भाई उस धर्म का पालन करें।

श्रीभरत की जो जिज्ञासा है, वह परमार्थ तत्त्व के विषय में नहीं है। व्यवहार तत्त्व के विषय में है। जैसा मैंने कहा व्यवहार का कोई साधारण महत्त्व नहीं है। विशेष रूप से जब किसी व्यक्ति को व्यवहार चलाने का भार सौंपा गया है, तब तो उसके लिये परम आवश्यक है कि उसको वह जाने। लेकिन लक्ष्मणजी के प्रश्न में कोई व्यवहार नहीं है। वे न राजनीति के विषय में पूछते हैं, न धर्म के विषय में प्रश्न करते हैं, कैसे व्यवहार करना चाहिए, इस पर भी वे प्रश्न नहीं करते। लक्ष्मणजी का प्रश्न शुद्ध आध्यात्मिक प्रश्न है। इसका अर्थ क्या हुआ? रामचरितमानस का दर्शन ही यही है कि बहिरंग जीवन में अगर नीति की आवश्यकता है, तो अन्तरंग जीवन में प्रीति और परमार्थ और आन्तरिक तत्त्वज्ञान भी उतना ही आवश्यक है। लक्ष्मणजी धर्म की स्थिति से भी ऊपर उठ चुके हैं और यों कह सकते हैं कि भगवान राम ने उनको भी धर्म का उपदेश देने का प्रयास किया था। वनवास के प्रसंग में आप पढ़ते हैं, भगवान श्रीराम वहाँ पर कहते हैं – लक्ष्मण, तुम याद रखो, पिताजी की कैसी दशा हो रही है, भाई भरत दूर हैं और इस समय अयोध्या अनाथ है। तो राजा का कर्तव्य तुम्हें निभाना है। इसलिए तुम्हें मैं यह एक ही सूत्र दे दूँ –

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।। २/७०/६

अब इससे बढ़कर कर्तव्य और धर्म की शिक्षा और क्या हो सकती थी ! लेकिन लक्ष्मणजी ने उसे अस्वीकार कर दिया। अस्वीकार कर देने का तात्पर्य यह है और वह इस अर्थ में ही लिया जाना चाहिए कि उन्होंने भगवान राम की आज्ञा नहीं मानी या कर्तव्य कर्म को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उसका अभिप्राय यह है कि उन्होंने स्पष्ट बता दिया कि मुझे उन वस्तुओं में न तो कोई आसक्ति है और न उन्हें पाने की इच्छा है। तो आपका उपदेश सुन्दर होते हुए भी मेरे लिये उपयोगी नहीं है। श्रीभरत जी जब बोलते हैं, तो अत्यन्त विनम्र वाणी में बोलते हैं। लक्ष्मणजी थोड़ा स्पष्ट-भाषी हैं। उन्होंने कहा कि महाराज, आपका यह उपदेश तो उन्हें मिलना चाहिए –

धरम नीति उपदेसिअ ताही।
कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।। २/७१/७

जो कीर्ति चाहते हैं, मरने के बाद जो स्वर्गादि गति चाहते हैं, ऐश्वर्य चाहते हैं, उनके लिए यह उपदेश उपयोगी है। लेकिन मेरी स्थिति ऐसी नहीं है। वह स्वाभाविक है। मानो लक्ष्मणजी का अभिप्राय यह है कि वे उससे ऊपर उठ चुके हैं। उसकी अपेक्षा उनके जीवन में नहीं है। तो इसे ऐसा कह लीजिए कि एक गृहस्थ जीवन के जो कर्तव्य हैं, एक संन्यासी के लिये वे कर्तव्य नहीं हैं। संन्यासी तो उन नियमों का पालन नहीं करेगा। उसको तो उससे बिलकुल भिन्न हो जाना है। वह अलग हो जाता है। ऐसी स्थिति है। लक्ष्मणजी गृहस्थ होते हुए भी एक ऐसे संन्यासी के रूप में हैं, ऐसे बिरागी हैं, जिनके लिये गोस्वामीजी ने कहा, श्रीराम को लक्ष्मण के सामने हार माननी पड़ी। श्रीराम ने देखा –

राम बिलोकि बंधु कर जोरें।
देह गेह सब सन तृनु तोरें।। २/६९/६

न तो वह देह में बैठा हुआ है और न गेह में। जो देह और गेह में है ही नहीं, तो उस व्यक्ति को मैं क्या बताऊँ कि देह के द्वारा क्या करना चाहिए। जो व्यक्ति गृह की आसक्ति से ही अपने को पूरी तरह से मुक्त कर चुका है, उसे क्या बताऊँ? भगवान राम व्यावहारिक उपदेश देने के बाद मौन हो जाते हैं और लक्ष्मणजी को साथ ले जाते हैं।

लक्ष्मणजी का प्रश्न सबके लिए उपयोगी है। इसलिये नहीं कि वह केवल संन्यास का प्रश्न है। वह तो वस्तुत: चतुर्वर्ग, चार फलों की बात है। इसका अभिप्राय है कि हमारे अन्त:करण में कुछ जानने, कुछ समझने, अपने आप को समझने के लिए वृत्ति होनी चाहिये। अपने आप को समझने का प्रयास बहुधा हम नहीं करते, अधिकांश लोग नहीं करते। लक्ष्मणजी का एक भी प्रश्न व्यावहारिक नहीं है। वे तो यह

शेष भाग पृष्ठ ३५८ पर

काव्य-लहरी

गाता हूँ मैं भारत-गान

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

भारत मेरी मातृभूमि है, गाता हूँ मैं भारत-गान।
ऋषि-मुनियों के भीषण तप से, राष्ट्र बना जग-गुरु महान।।
भारत की महिमा का गायन, करते हैं सब देव सुजान।
सौ-सौ स्वर्गों से भी सुन्दर, भारत बना विश्व-वरदान।।
ज्ञानसूर्य है यहाँ चमकता, भरता जग आलोक-वितान।
सुखमय जीवन जीये सब जन, भारत का है यह अरमान।।
यहाँ नहीं धर्मों का झगड़ा, देश सतत रत जग-कल्यान।
सकल विश्व के सब जन हम हैं, एक सुखी परिवार-समान।।
भारत के पर्वत-नद सुन्दर, गंगा भारत की है प्रान।
धवल हिमालय पुन्य भूमि है, रहते हैं शंकर भगवान।।
ऐसा सुन्दर देश हमारा, इस पर है हमको अभिमान ।
शास्त्र हमारे हमें बताते, हम सब हैं अमृत-सन्तान।।

वेणु बजी मनमोहन की

श्रीधर

एक निशा निधि कुंज निशीथ
सुधाकर ने सुषमा बरसाई ।
नीप मनोहर पुष्प खिले परि
जात सुगंध सनी मृदु वाई ।
वेणु बजी मनमोहन की सुन
दौड़ चली वनिता वन आई।
लौकिक प्रेम अलौकिक हो
तन अर्ध बनी तन आध कन्हाई ।।

तब ही सुखमय होगा जीवन

विजय कुमार श्रीवास्तव

उहापोह में जीकर जीवन, खो बैठे क्यों अपना हो मन।
स्थिर होकर स्वप्न सजाओ, हरी छाँह में अलख जगाओ।।
हर उपवन में दे-दे ताली, नाचो बनकर उसके माली।
हरियाली के दिव्य सखा बन, बहलाओ अपना टूटा मन ।।
बाड़ न देखो, झाड़ न देखो, देखो हरियाली आपा खो ।
जहाँ नहीं जीवन की कटुता, ढूँढों उसमें मनहर ममता ।।
नहीं जहाँ पर रातें काली, झूम रहीं साखें मतवाली।
डाली-डाली, पल्लव-पल्लव, फुदक रहे खग करते कलरव।।
हरित पर्ण दिखलाते बचपन, कलियाँ बिखराती हैं यौवन।
सहज द्रुमों का समरस जीवन, आकर्षित करता सबका मन ।।
वायु-वेग छाती पर लेकर, जनहित में जो रहते तत्पर।
कितना प्यारा है उनका धन, झुक-झुक जो करते अभिवादन।।
ऐसे हरित कलेवर में तुम, प्रायः क्यों रहते हो गुम सुम?
सखा जहाँ तरुवर वन-उपवन, कैसे खो सकता पैनापन ।।
मत भूलो खग मृग या मानव, सुत धरती माँ के ही अभिनव।
जल का हर कण वन का तृण-तृण, सदा शीघ्र भरता रहता व्रण।।
भौंरे, तितली, खग, पशु, मानव, सब इठलाते पा जीवन नव।
अतः सहोदर बनो धरा के, रहें समृद्ध सभी संसाधन।।
पर्ण हरित वसुधा के उपवन, और न कम हों जल संसाधन।
हो न प्रदूषण पुण्य धरा पर, तब ही होगा सुखमय जीवन ।।

विवेकानन्द वन्दना

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी'

जयतु नरेन्द्रनाथ जगवन्दन । विश्वनाथ भुवनेश्वरी नन्दन ।।
जय वीरेश्वर जय शिवशंकर। भ्रमहर भास्कर जय अभयंकर।।
युगाचार्य हे जगदुद्धारक । मोह, तिमिर भय शोक निवारक।।
आर्यभूमि हित नर तनुधारी । प्रेम पीयूष निछावरकारी ।।
रामकृष्ण लीलासहचारी । विश्वविमोहन जग उपकारी ।।
विवेकानन्द नाम शुभ धारी । परमहंस प्रिय काज सँवारी ।।
धर्मधुरन्धर योगाचारी । वेदान्तामृत वारि प्रसारी ।।
ज्ञान-भक्ति-वैराग्य जगावन। तम-निद्रा दुख-द्वन्द्व नशावन।।

राय बाघिनी रानी भवशंकरी

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो ! हम सबने रानी लक्ष्मीबाई के बारे में पढ़ा है, हम जानते और सुनते हैं, लेकिन रानी भवशंकरी के बारे में मैंने भी कुछ दिन पहले ही सुना। उनका जीवन वीरता से परिपूर्ण था। आओ, आज मैं तुम्हें उनकी कहानी सुनाती हूँ।

रानी भवशंकरी भी रानी लक्ष्मीबाई जैसी ही वीर और साहसी थी। १६वीं शताब्दी में जब भारत पर पठानों और मुगलों ने हमला किया था, दोनों भारत को हड़पने के लिये लड़ रहे थे। ऐसे समय में पूर्व में एक ब्राह्मण परिवार में एक बालिका का जन्म हुआ, जिसका नाम भवशंकरी रखा गया। भवशंकरी के पिता दीनानाथ चौधरी भूरी श्रेष्ठ राज्य के पिंडवा के सेनापति थे। भवशंकरी अपने माता-पिता की दो सन्तानों में से एक थीं। भवशंकरी के छोटे भाई को जन्म देते समय उनकी माँ की मृत्यु हो गयी। माँ के निधन के बाद भवशंकरी ने अपने पिता की देखरेख में अपनी शिक्षा-दीक्षा और प्रशिक्षण को पूरा किया।

आगे चलकर भवशंकरी का विवाह भूरीश्रेष्ठ जिसे भूरसूठ भी कहा जाता है, के राजा रूद्र नारायण के साथ हुआ। भवशंकरी देवी चण्डी की अनन्य भक्त थी, कहा जाता है कि भवशंकरी की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर देवी ने उसे युद्ध में कभी न हारने का वरदान दिया था और एक तलवार भी भेंट में भवशंकरी को मिली थी। कुछ समय बाद रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम प्रतापनारायण रखा। पुत्र के ५ वर्ष के होने पर उनके पति रूद्रनारायण का देहान्त हो गया। बच्चे की अल्प आयु होने के कारण राजपाठ भवशंकरी को ही सँभालना पड़ा।

उधर उस्मान खाँ के नेतृत्व में पठानों को भूरीश्रेष्ठ पर कब्जा करने का यही समय उपयुक्त लगा। एक कम उम्र के राजा और दुखी विधवा रानी द्वारा शासित राज्य को हथियाना उसे आसान लग रहा था। उस्मान ने भूरीश्रेष्ठ के सेनापति चतुर्भुज चक्रवर्ती को लालच देकर अपनी ओर मिला लिया, जिसने यह जानकारी दी थी कि रानी अपने पुत्र के साथ प्रतिदिन पूजा करने कस्टसंग्रह के शिव मंदिर में जाती हैं। रानी के साथ उनकी चुनी हुई महिला अंगरक्षक होती थीं। भवशंकरी को यह आभास था कि पठान कभी भी उन पर हमला कर सकते हैं, इसलिए वे पूजा के समय भी युद्ध-कवच पोशाक के अंदर पहनती थीं। सेनापति चतुर्भुज की सहायता से पठानों की सेना घुस गई थी, जिसकी जानकारी गुप्तचरों

द्वारा रानी को हो चुकी थी। रानी ने भी अपनी २०० महिला सैनिकों को मंदिर के आस-पास के क्षेत्र में फैला दिया था। अगले दिन जैसे ही वे पूजा करने गईं, उसके कुछ समय बाद ही पठानों की सेना ने आक्रमण कर दिया, जिसके जवाब में भवशंकरी की सेना ने जमकर युद्ध किया और उन्हें मार गिराया। इसमें उस्मान खाँ जान बचाकर भागने में सफल रहा।

कुछ समय पश्चात् रानी के राज्याभिषेक के समय दोबारा उस्मान खाँ ने हमले की साजिश रची और अपनी सेना को बसुरी की जंगलों में फैला दिया, यह खबर अपने गुप्तचर से मिलने पर भवशंकरी ने बिना विलम्ब किये अपनी महिला बटालियन को बुलाकर चारों ओर तैनात कर दिया, जिसमें ५०० पैदल सेना, ५०० घुड़सवार सेना और १०० की हाथी ब्रिगेड सेना शामिल थी और स्थानीय लोगों ने भी सेना का साथ दिया। जैसे ही पठान की सेना वहाँ पहुँची, वह तीनों ओर से खाइयों से घिरे स्थान पर भूरीश्रेष्ठ की सेना से घिर गई। भीषण युद्ध हुआ, भवशंकरी हाथी पर सवार होकर पठानों का संहार कर रही थी। देखते ही देखते पठानों की सेना समाप्त होती जा रही थी। घायल और हारा हुआ उस्मान खाँ मैदान छोड़कर वेष बदलकर फकीर बनकर उड़ीसा की ओर भाग पड़ा। इसके बाद वह कभी लौटकर बंगाल नहीं गया। इतिहास में यह युद्ध बसुरी के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध की सूचना जब मुगल शासक अकबर तक पहुँची, तो उसने रानी भवशंकरी को 'राय बाघिनी' (Royal Tigress) की उपाधि दी।

पुत्र के बड़े होने पर राजपाठ उसे सौंपकर उन्होंने आध्यात्मिक जीवन को अपना लिया और काशी को प्रस्थान की। वे एक साहसी महिला थीं, आगे चलकर उनकी वीरता की गाथा लोककथाओं व आत्मगीतों का भाग बनी। तो बच्चो, हमें कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अपने आप पर विश्वास बनाये रखना चाहिए। ○○○

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में संस्कृत एवं संस्कृति

डॉ. स्वामी दयापूर्णानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, संस्कृत भाषा के शब्द मात्र से ही समग्र मानवजाति को एक अभूतपूर्व शक्ति, आत्मसम्मान एवं जोश का अनुभव होता है।

सनातन भारतीय सभ्यता तथा समाज एकमात्र धर्म पर आधारित है। यह धर्म सनातन है और हमारी संस्कृति का धारक भी है। भाषा इसकी वाहिका के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले जाती है। इसलिए इसके महत्त्व और शक्ति को इसके पीछे अत्यन्त आवश्यक माना गया है। भारत में सदियों से चली आ रही विभिन्न भाषाओं के होने के उपरान्त भी हिन्दुओं को एक अखण्ड धर्म में जोड़े रखने का मूल श्रेय जाता है हमारी देवभाषा संस्कृत को। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''संस्कृत और स्वाभिमान भारत में स्वाभाविक अनुस्यूत है।''

स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने जीवन-काल में संस्कृत भाषा एवं हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन किया है। केवल स्वयं को ही नहीं, बल्कि दूसरों को और भविष्य के भारत को भी इस दिशा में सदैव प्रेरित किया है। इस आलेख में हम इसी विषय पर उनके जीवन से सम्बन्धित कुछ दृष्टान्तों के साथ चर्चा करेंगे।

बाल्यावस्था में ७ साल की आयु में ही स्वामीजी स्वयं मुग्धबोध संस्कृत व्याकरण का अध्ययन कर चुके थे तथा उन्हें संस्कृत के श्लोक कण्ठस्थ थे। बाद में स्वामीजी वराहनगर मठ में रहने के समय काशी के विद्वान पंडित श्री प्रहलाद दास मित्र से पाणिनि की अष्टाध्यायी पुस्तक को मँगवा कर अपने गुरु-भाइयों के साथ अध्ययन करते थे। उस समय उन्होंने बंगाल में वेद-अध्ययन का अभाव देखते हुए अपने गुरुभाइयों के साथ पठन-पाठन प्रारम्भ किया था। तत्कालीन बंगाल में वेदाध्ययन के अभाव से वे बहुत दुखित थे एवं उसके पुन: प्रचलन हेतु संस्कृत व्याकरण का पठन-पाठन प्रारम्भ करना चाहते थे। उन्होंने एक पत्र में लिखा है कि मठ में संस्कृत शास्त्र का विशेष अध्ययन हो रहा है। इस कार्य के लिए योग्य अध्यवसाय, प्रतिभा और गंभीर बुद्धिसम्पन्न व्यक्तियों का भी मठ में अभाव नहीं है।

परिव्राजक काल में स्वामीजी ने पुन: पाणिनि अष्टाध्यायी का अध्ययन एक विद्वान पंडित जी से किया था। वे वेदों के पठन और अनुवाद आदि के कार्य में सहायता करने के लिए एक स्थान पर ११ महीना तक रुके थे। लिमडी में संस्कृत पंडितजी से चर्चा करते हुए देखकर वहाँ उपस्थित पुरी गोवर्धन मठ के श्रीशंकराचार्य जी आश्चर्यचकित हो गए थे। स्वामीजी के कहने पर खेतड़ी के महाराज ने वहाँ संस्कृत शिक्षा के लिए पहल की थी और राज कोषागार से सहायता भी की थी। वहाँ के स्थानीय संस्कृत विद्यालय को स्वामी अखण्डानन्द जी ने वैदिक पाठशाला में रूपान्तरित किया था और यजुर्वेद का अध्ययन भी प्रारम्भ करवाया था। स्वामीजी जब बेलगाँव में एक मराठा सज्जन के गृह में कुछ समय बिताये थे, तब गृह-स्वामी का पुत्र पाणिनि अष्टध्यायी का अध्ययन कर रहा था। उसे अपनी शिक्षा या उसके स्मरण में जो भी त्रुटि थी, उसे स्वामीजी के पास सुधार लेने का अवसर मिला था। स्वामीजी ने भी उसे संस्कृत व्याकरण का सही ढंग से अध्ययन करने का सुझाव दिया था।

स्वामीजी के अलवर-प्रवास के समय उनसे प्रेरित होकर वहाँ के युवक भी संस्कृत का अध्ययन करने लगे थे। स्वामीजी ने उनसे कहा था कि संस्कृत के साथ ही पाश्चात्य विज्ञान का भी अध्ययन करें, ताकि उससे भारतीय सभ्यता का इतिहास भी शुद्ध क्रम से लिपिबद्ध किया जा सके। इसका मुख्य कारण विदेशियों द्वारा लिखा हुआ भारत का सांस्कृतिक इतिहास भ्रामक है। क्योंकि यह भी सम्भव है कि भारतीय संस्कृति व ज्ञान की वे ठीक से पहचान न कर सकें हों। इसलिये उनके द्वारा लिखित पुस्तकों में बहुत सारे तथ्यहीन विषय भी शामिल किये गये हैं, जो सर्वथा अनुचित है। इसीलिए भारतीयों को ही भारत की सच्ची कहानी लिखनी पड़ेगी। उसके लिए पहले अपने देश के वेद, पुराण, आगम, आदि सारे ग्रन्थों का भली-भाँति अध्ययन कर लेने के पश्चात् भारत का प्रेरक पूर्ण सत्य विश्व के सामने प्रस्तुत करना पड़ेगा। इसीलिए हमें इस महत्त्वपूर्ण कर्तव्य के पथ पर उतरना होगा और अपने खोये एवं भूले हुए अतीत के खजाने का पुनरुद्धार करना होगा। जैसे कोई व्यक्ति अपनी संतान के खो जाने से उसकी पुन: प्राप्ति तक अविराम प्रयत्नशील रहता है, ठीक वैसे ही हमें अपने गौरवमय अतीत को जनमानस में पुन: प्रतिष्ठित न करने तक विराम नहीं लेना चाहिए। यही है सार्थक राष्ट्रीय शिक्षा एवं इसी से भारत का राष्ट्र-बोध पुन: उदित होगा।

परिव्राजक काल में स्वामीजी के जीवन की एक अन्य घटना दृष्टान्त के रूप में उल्लेखनीय है। स्वामीजी का कन्याकुमारी-गमन के ठीक पहले पंडित प्रवर श्री वंशीश्वर शास्त्रीजी के साथ साक्षात्कार हुआ था। जब वे श्री मन्मथनाथ भट्टाचार्य के साथ निकलनेवाले थे, तभी वे आचार्य स्वामीजी से मिलने के लिए वहाँ पहुँचे। सीढ़ी से उतरने के समय दोनों महानुभावों की भेंट हुई और लगभग ७-८ मिनट तक दोनों ने संस्कृत भाषा में वार्तालाप किया। इस बातचीत में स्वामीजी ने संस्कृत व्याकरण के कुछ जटिल विषयों की अवधारणा करते हुए अपने ज्ञान-कौशल का परिचय देकर उन पंडितजी को मुग्ध व आश्चर्यचकित किया था। (स्मृतिपाठ : के. सुदर्शन अय्यर, २२ दिसम्बर, १८९२)

अमेरिका में स्वामीजी जब सनातन हिन्दू धर्म के तत्त्वों को साधारण जनता के समक्ष उपस्थित कर रहे थे, तब उनके किसी परिचित ने उनसे अंग्रेजी भाषा एवं उसके सहारे पाश्चात्य जगत में धर्म और दर्शन के लिए उनके शब्द-चयन के विषय में प्रश्न पूछा। स्वामीजी ने अपने उत्तर में बताया कि संस्कृत ही धर्म का चिन्तन और धारण करने के लिये एकमात्र उपयुक्त एवं सहज व सरल माध्यम है, जिसका वे प्रयोग करना चाहते थे। परन्तु उनके पाश्चात्य श्रोताओं में कम से कम एक भी ऐसा श्रोता नहीं था, जो संस्कृत समझ सके। फिर भी वे लोग वेदों तथा हिन्दू धर्म के सनातन शास्त्रों के विषय में समालोचना व व्यावहारिक चर्चा कर रहे थे। स्वामीजी का मत था कि सम्भवत: ग्रीक और भारतीय ज्योतिष इत्यादि में शब्दों के प्रयोग को लेकर कुछ सहमति हो सकती है। लेकिन पाश्चात्य विद्वान ग्रीक से संस्कृत शब्दों की उत्पत्ति होने की चर्चा कर रहे थे। ऐसी भ्रामक, पक्षपाती और निकृष्ट ज्ञान-चर्चा पाश्चात्य जगत में मुख्य रूप से विद्यमान है, जो अत्यन्त निन्दनीय है।

पश्चिम से भारत लौटने के पश्चात् स्वामीजी को कलकत्ता में कुछ पंडितों से संस्कृत में वार्तालाप करते हुए देखकर स्वामीजी के गुरुभाई उनके संस्कृत-ज्ञान को देखकर आश्चर्यचकित हो गये थे। पाश्चात्य जगत में रहते समय उन्हें संस्कृत भाषा में चर्चा और वार्तलाप करने का अवसर बिलकुल ही प्राप्त नहीं हुआ था। इसके बाद भी स्वामीजी अपने शिष्य संस्कृतज्ञ पंडित शरतचन्द्र चक्रवर्ती से भी बीच-बीच में संस्कृत भाषा में बातें करते थे। उनके शिष्य भी उनसे संस्कृत में कभी-कभी बात करते थे और स्वामीजी उन्हें इसके लिए प्रेरित करते थे। स्वामीजी उनसे तथा अपने संन्यासी शिष्य स्वामी शुद्धानन्द जी को भी संस्कृत में पत्र लिखते थे। कोलकाता में लौटने के पश्चात् स्वामीजी ने मठ में साधु-ब्रह्मचारियों के लिए संस्कृत भाषा के पठन-पाठन आरम्भ किया था एवं प्राच्य और पाश्चात्य दर्शनों की शिक्षा भी देना प्रारम्भ किया था।

स्वामीजी की हार्दिक इच्छा थी कि वेद एवं अन्य शास्त्रों की चर्चा भी मठ में हो। मठ जब नीलाम्बर मुखर्जी के बगीचे में था, उस समय स्वामीजी स्वयं अपने गुरु-भाइयों के साथ मठ में वेद, उपनिषद, वेदान्त सूत्र, गीता, भागवत आदि का पठन-पाठन करवाते थे। उन्होंने स्वयं ही पाणिनि अष्टाध्यायी की शिक्षा दी थी। उन्होंने उस समय स्वयं ही संस्कृत शास्त्रों तथा साहित्य का अध्ययन किया था। इसी समय उन्होंने दो विख्यात स्तोत्रों की संस्कृत भाषा में रचना की थी, जिसमें से एक स्तोत्र वर्तमान काल में भी रामकृष्ण

संघ के सभी शाखा केन्द्रों में दैनन्दिन संध्या आरती के समय गाया जाता है। स्वामीजी ने १९०२ में अपनी महासमाधि के दिन भी दोपहर १ बजे भोजन के पश्चात् ब्रह्मचारियों को अपने कक्ष में बुलाकर संस्कृत व्याकरण की कक्षा ली थी। उस दिन पाठ करीब ३ घंटे तक चला, परन्तु फिर भी किसी को कोई थकान या पुनरावृत्ति का अनुभव नहीं हुआ।

स्वामीजी ने अपने भारतीय व्याख्यान में बारम्बार संस्कृत के पुनरुत्थान एवं इससे भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण पर बल दिया है। उन्होंने संस्कृत के प्रकृत ज्ञान के प्रचार-प्रसार के महत्त्व को बताया है, जो हिन्दुओं की संस्कृति का रक्षक एवं भारत की सदियों से चली आ रही अति अद्‌भुत आध्यात्मिक कथा का धारक है। क्योंकि बिना संस्कृत के ज्ञान के साधारणत: अधिकांश हिन्दू अपनी उच्च संस्कृति से वंचित रह जाएँगे। केवल ज्ञान मनुष्य को सहारा नहीं दे सकता है, अपितु संस्कृति ही है, जो उनको पराभव और विरोध से, दुष्परिणामों और दुष्प्रभावों से बचा सकती है। उन्होंने कहा था कि तथाकथित निम्न दरिद्र जातियों एवं भारतीय नारियों को भी संस्कृत ज्ञान की शिक्षा अवश्य देनी चाहिए, ताकि उन सब लोगों को भी भारत की प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति का ज्ञान हो एवं वे लोग ऋषियों की सभी आध्यात्मिक उपलब्धियों को भी अपने जीवन में उतार सकें। तब वे लोग स्वयं ही अपनी समस्याओं का सही समाधान कर सकेंगे। जब वे लोग धर्म के मूल तत्त्व को ठीक से जान लेंगे, तब उच्च आदर्श के पथ पर चलकर प्रकृत उपलब्धि के साथ जीवन को सुधार पाएँगे। अपने इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए स्वामीजी उस समय ही संस्कृत तथा संस्कृति की उच्च भास्कर शारदा पीठ कश्मीर में एक संस्कृत कॉलेज की स्थापना एवं शुभारम्भ करने के उत्सुक थे। तत्कालीन हिन्दू शासक के सहर्ष स्वीकृति देने पर भी अँगेजों के विरोध के कारण यह नहीं हो सका।

स्वामीजी का यह मानना था कि संस्कृत के बिना हमारी संस्कृति की पहचान सम्भव नहीं। केवल शुष्क ज्ञान से ही मनुष्य उन्नत नहीं होता, बल्कि एकमात्र संस्कृति ही उसको सम्मान दिलाती है। संस्कृति के अभाव में कितनी उच्च सभ्यताएँ ध्वंस हो गईं और उसके मलिन एवं विकृत रूप प्रकट हो गये। संस्कृत के कारण ही भारत का भी सांस्कृतिक विनाश न हो सका। परन्तु बुद्ध, चैतन्य, कबीर आदि की उन्नत प्रभा भी इसी संस्कृत के अभाव में सीमित रह गयी। इसलिये संस्कृत का पुन: प्रचलन और इसके द्वारा दूसरे भारतीय भाषाओं में भी धर्म तथा शास्त्र का विपुल प्रसार होना चाहिए, यही स्वामीजी चाहते थे। मद्रास में प्रदत्त 'भारत का भविष्य' नामक भाषण में उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि विदेशियों के पास भी हमारी संस्कृति की पहचान तथा इसका प्रचार-प्रसार हो सके। भगिनी निवेदिता अपनी स्मृतियों में स्वामीजी से अपनी प्रथम भेंट के सम्बन्ध में लिखती हैं – इंग्लैंड के उस दोपहर में स्वामीजी के भाषण का बहुत क्षणिक अंश ही उनकी स्मृति में अवशेष रह गया है। परन्तु उस शाम में स्वामीजी ने उन्हें कुछ संस्कृत स्तोत्र सुनाये थे। भारतीय सभ्यता की अद्‌भुत श्रुति और शब्द निवेदिता के हृदय में सदा के लिए अंकित हो गये। इन महापुरुषों के मार्ग-दर्शन में हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत व देवभाषा संस्कृत का अध्ययन तथा भारत-भारती का पुन: स्थापन अवश्यम्भावी और अत्यावश्यक प्रतीत होता है। ○○○

पृष्ठ ३५३ का शेष भाग

प्रश्न करते हैं कि महाराज, ज्ञान क्या है? माया क्या है? भक्ति क्या है? मैं चाहता हूँ कि जीवन में शोक, मोह, भ्रम न रह जाय। शोक-मोह-भ्रम से दूर होकर मैं आपके चरणों की सेवा करूँ। मानो लक्ष्मणजी का प्रश्न शुद्ध आध्यात्मिक प्रश्न है। उन लोगों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। अन्य लोगों के लिये भले ही तत्काल उतना उपयोगी न हो, पर एक बार उसे संस्कार में रख लेने पर, आवश्यकता होने पर कभी आपको अनुभव हो कि शोक है, मोह है, भ्रम है और उसका निराकरण कैसे हो, किस तरह से इन तीनों की जीवन में पूरी तरह से समाप्ति हो जाये, तो आप इस प्रसंग पर गहराई से दृष्टि डालेंगे। **(क्रमश:)**

वाराणसी के गोपाल लाल विला में विवेकानन्द : कुछ अज्ञात तथ्य

शान्ति कुमार घोष

अपने जीवन के अन्तिम वर्ष १९०२ में स्वामी विवेकानन्द ने वाराणसी की यात्रा की थी। वे एक महीने से अधिक समय तक वहाँ रहे थे। बेलूड़ मठ में महासमाधि से पहले, मठ के बाहर उनकी यह अन्तिम यात्रा थी। वाराणसी में स्वामीजी अपने साथियों के साथ विशाल गोपाल लाल विला में रुके थे। यद्यपि उनके जीवन के अन्तिम वर्ष में स्वामीजी का वाराणसी प्रवास अच्छी तरह से प्रलेखित है, किन्तु दुख की बात है कि उनके जीवन पर प्रकाशित किसी भी पुस्तक में उनके वाराणसी में आगमन और प्रस्थान दिनांकों का उल्लेख नहीं किया गया है। इस कमी के कारण यह पता लगाना कभी सम्भव नहीं हो सका कि इस पवित्र शहर की अपनी अन्तिम यात्रा में उन्होंने कितने दिन बिताए। यह उनके प्रवास की अवधि के विभिन्न प्रकाशित साहित्यों में विभिन्न अनुमानों से स्पष्ट होता है।

गोपाल लाल विला' (सौधावास), वाराणसी

इस आलेख में, वर्ष १९०२ में स्वामी विवेकानन्द के वाराणसी आगमन और प्रस्थान के सटीक दिनांकों को जानने का एक सार्थक प्रयास किया गया है और प्रामाणिक दिनांकों से गोपाल लाल विला में उनके द्वारा बिताए गए दिनों की सही सूचना उपलब्ध हो जाती है।

जनवरी, १९०२ में वाराणसी के मार्ग में स्वामी विवेकानन्द ने जापान से आए अतिथि श्री ओकाकुरा काकुजो और अन्य लोगों के साथ बेलूड़ मठ से बोध गया के लिए प्रस्थान किया एवं २८ या २९ जनवरी को बोध गया पहुँचे।

सन्दर्भ : The Life of Swami Vivekananda By His Eastern and Western Disciples),) अंग्रेजी संस्करण खंड-२, सातवाँ संस्करण, नौवा पुनर्मुद्रण, जुलाई २०१४ के पृष्ठ ६२१ और ६२३ में दिनांक २९ जनवरी बताया गया है, जबकि पृष्ठ ६२२ में स्वामीजी के साथ आए भक्त और सहायक श्री नरेशचन्द्र घोष (गौर) के लेखन से उद्धृत तारीख २८ जनवरी है। स्वामी गम्भीरानन्द द्वारा लिखित बंगाली पुस्तक 'युगनायक विवेकानन्द, खंड ३, प्रथम संस्करण, २७वाँ पुनर्मुद्रण, अप्रैल २०१८ के पृष्ठ ३४६ में दिनांक २८ जनवरी बताया गया है।

बोध गया में लगभग एक सप्ताह रहने के बाद स्वामी विवेकानन्द ने फरवरी के पहले सप्ताह में वाराणसी के लिए प्रस्थान किया और शाम को वहाँ पहुँचे। स्टेशन पर लगभग पाँच सौ लोगों की उत्साही जनता ने उनका स्वागत किया। श्री ओकाकुरा काकुजो के अलावा, स्वामीजी के साथ स्वामी निर्भयानन्द, स्वामी बोधानन्द, 'गौर' (नरेशचन्द्र घोष) और 'नेड़ा' नामक दो युवा भक्त और सहायक साथी भी थे।

सन्दर्भ : 'नेड़ा' – 'द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द बाय हिज ईस्टर्न एंड वेस्टर्न डिसाइपल्स, 'अंग्रेजी संस्करण, खंड २, सातवाँ संस्करण, नौवा पुनर्मुद्रण, जुलाई २०१४ के पृष्ठ ६२२ में नाम का उल्लेख 'नेड़ा' के रूप में किया गया है, जबकि स्वामी गम्भीरानन्द द्वारा लिखित 'युगनायक विवेकानन्द' खंड ३, प्रथम संस्करण, २७वाँ पुनर्मुद्रण अप्रैल २०१८, के पृष्ठ ३४६ में नाम 'नादु' के रूप में उल्लेख किया गया है।

वर्ष १९०२ में जब स्वामीजी वाराणसी आये, तब स्वामी शिवानन्द और स्वामी निरंजनानन्द जी वाराणसी में रह रहे थे। उन्होंने श्री काली कृष्ण ठाकुर के 'गोपाल लाल विला' (सौधावास) नामक एक विशाल विला में स्वामीजी और अन्य लोगों के रहने की व्यवस्था की। वे स्वयं भी स्वामीजी के वाराणसी प्रवास के दौरान उनके साथ रहने के लिये गोपाल लाल विला में स्थानान्तरित हो गए और स्वामी ब्रह्मानन्द की डायरी के अनुसार, बाद में स्वामीजी के साथ बेलूड़ मठ गए। (युगनायक विवेकानन्द के खंड ३ पृष्ठ ३५७)

स्वामी विवेकानन्द के आगमन का दिनांक

स्वामीजी फरवरी, १९०२ के पहले सप्ताह में वाराणसी पहुँचे थे। इस तथ्य का उल्लेख करने के अतिरिक्त उनके वाराणसी आगमन की निश्चित तिथि किसी भी पुस्तक में उल्लिखित नहीं है।

स्वामी विवेकानन्द ने १९०२ में अपने वाराणसी-प्रवास काल में कुल मिलाकर ११ पत्र लिखे, जिसमें से पहला पत्र ७ फरवरी, १९०२ को मिस जोसेफिन मैकलाउड को सम्बोधित किया और अन्तिम पत्र ४ मार्च, १९०२ को सिस्टर निवेदिता को सम्बोधित किया।

७ फरवरी को मिस मैकलाउड को लिखे गए पत्र के साथ व्यय का विवरण का एक संलग्नक है, जिसमें ४ से ६ फरवरी तक कुल सौ (१००) रुपये का प्रत्येक दिन का खर्च का विवरण दिया गया है। स्वामीजी द्वारा प्रदत्त ४ फरवरी के निम्नलिखित खर्च के विवरण से हमें वर्ष १९०२ में उनके वाराणसी पहुँचने के सही दिनांक और अनुमानित समय के बारे में सूचना मिलती है –

४ फरवरी १९०२	१०० रुपये
	रुपये आना पैसे
गया से बनारस तक का ट्रेन का किराया	२०. ४०
गया में परिवहन के लिये खर्च	५.००
टेली संदेश	२.००
जलपान कक्ष (सुबह)	१.८०
कूली खर्च गया	१.००
तम्बाकू आदि	०.५०
जलपान कक्ष (शाम)	२.०३
कूली खर्च (बनारस में)	१.१०
बनारस में परिवहन के लिये खर्च	१.००

स्वामी विवेकानन्द द्वारा दी गई उपरोक्त जानकारी से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अन्य लोगों के साथ ४ फरवरी, १९०२ की शाम को वाराणसी पहुँचे थे।

'द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द बाय हिज ईस्टर्न एंड वेस्टर्न डिसाइपाल्स' (अंग्रेजी संस्करण, खंड २, सातवाँ संस्करण, नौवाँ पुनर्मुद्रण जुलाई २०१४) के पृष्ठ ६२४ की २८वीं पंक्ति में एक अवांछित लेकिन गंभीर गलती हो गई है, जहाँ यह उल्लेख किया गया है कि स्वामीजी ने ३ फरवरी को वाराणसी से स्वामी स्वरूपानन्द को पत्र लिखा था। पत्र का सही दिनांक ९ फरवरी, १९०२ है, ३ फरवरी, १९०२ नहीं। सही दिनांक सत्यापित करने के लिये, 'कंप्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द , (Complete Works of Swami Vivekananda) (२१st) इम्प्रेशन, फरवरी २००९ के खंड ५ के पृष्ठ १७२ या फ्रैंक पार्लाटो जूनियर द्वारा 'Dates in the life of Swami Vivekananda' में फरवरी १९०२ सन्दर्भित किया जा सकता है।

पत्र का गलत दिनांक अर्थात् यानी ९ फरवरी के बजाय ३ फरवरी का उल्लेख और चर्चा करना आवश्यक हो गया है, अन्यथा यह पुन: भ्रम पैदा कर सकता है। अनजाने में हुई उपरोक्त त्रुटि को विनम्रतापूर्वक अद्वैत आश्रम, कोलकाता के ध्यान में लाया जाएगा एवं भविष्य में सुधारने हेतु अनुरोध किया जायेगा।

स्वामी विवेकानन्द के प्रस्थान का दिनांक

दोनों पुस्तकों 'द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द बाय हिज ईस्टर्न एंड वेस्टर्न डिसाइपल्स', अंग्रेजी संस्करण, खंड २ और युगनायक विवेकानन्द' खंड ३ में उल्लेख किया गया है कि स्वामीजी ८ मार्च, १९०२ को बेलूड़ मठ वापस आये। यद्यपि बेलूड़ मठ में आगमन के दिनांक का दस्तावेजीकरण किया गया है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि स्वामीजी ने ७ मार्च या ८ मार्च को वाराणसी छोड़ा था।

वाराणसी और हावड़ा के बीच ट्रेन की दूरी लगभग ७०० किलोमीटर या ४३५ मील है। वर्ष १९०२ में धीमी गतिवाले स्टीम इंजनों को यह दूरी तय करने में लगभग १८ से २० घंटे लगते थे। इसे ध्यान में रखते हुए स्वामी विवेकानन्द के वाराणसी प्रस्थान का सबसे सम्भावित दिनांक ७ मार्च था और वे ८ मार्च, १९०२ को हावड़ा पहुँचे।

अब जबकि वर्ष १९०२ में स्वामी विवेकानन्द की वाराणसी यात्रा के सटीक दिनांक स्थापित हो गये हैं, तो हम उनके प्रवास की अवधि निर्धारित करने में भी सक्षम हो गए हैं, जो इस प्रकार हैं :

आगमन – ४ फरवरी, १९०२

प्रस्थान – ७ मार्च, १९०२

वर्ष १९०२ में गोपाल लाल विला में बिताए गए दिन- ३१ रातें/३२ दिन। भक्तों के लिए वीरेश्वर विवेकानन्द भगवान शिव के अवतार हैं और यह उनकी दिव्य लीला हो सकती है कि उन्होंने अपनी महासमाधि से पहले भगवान शिव के निवास स्थान वाराणसी की यात्रा की हो। ○○○

सत्संग से निःसंगता आती है

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हमारे अपने दैनिक जीवन में एक दिन भी ऐसा नहीं जाना चाहिए कि हमने आज प्रार्थना, साधना नहीं की। एक दिन भी हमारी साधना खाली नहीं जानी चाहिए। हम लोगों के जीवन में स्वाभाविक भक्ति होनी चाहिए। संसार में रुचि लेना मन का स्वभाव है, लेकिन हमें उसे भगवान में रुचि उत्पन्न कराना है। हमें अपने २४ घंटे के जीवन के बारे में सोचना चाहिये। भोजन के समान साधन-भजन भी होना चाहिए। सोते समय आध्यात्मिक चर्चा ही करनी चाहिए। सोने के समय संसार का चिन्तन नहीं करके परमार्थ का चिन्तन करना चाहिए। सोते समय गुरु और भगवान का चिन्तन बना रहे। सोते समय अशुभ चिन्तन नहीं होना चाहिए।

सबेरे उठने के बाद भगवान का ही चिन्तन होना चाहिए। रामकृष्ण भावधारा भक्ति मार्ग है। प्रार्थना अपनी भाषा में और अपने भाव में करनी चाहिए। बच्चा अपनी माँ से बिना संकोच किये हठ करता है। ऐसा हठ और प्रार्थना हमें भगवान से करना है। हे प्रभु मेरे तन को शुद्ध और पवित्र कर दो। मेरे मन को शान्त और एकाग्र कर दो। एक दिन भी हमारी साधना न छूटे। जब हम जप करने बैठते हैं, तब तामसिक शक्तियाँ हमारे पास आती हैं। तब हमें सावधान होकर उधर ध्यान न देकर केवल भगवान के नाम का जप करना चाहिये। बाद में सब कुछ अपने इष्ट को समर्पित कर देना चाहिये। ईश्वर के सान्निध्य का सतत अभ्यास करना चाहिये। भगवान सतत जाग्रत हैं। जैसे अकाश सर्वत्र है। वैसे ही ईश्वर भी सर्वव्यापी है। ईश्वर के अस्तित्व के अतिरिक्त कोई हो ही नहीं सकता। ईश्वर कल्याणमय हैं। अपने कर्मों के कारण ही हम सुख-दुख, कल्याण और अकल्याण को भोग रहे हैं। हम सोचते हैं, ऐसा करो, तो हमारे जीवन में व्यवस्था आयेगी। मैं शाश्वत साक्षी द्रष्टा हूँ। हमारा व्यक्तित्व हमारा मन है। इस जन्म में हम ऐसा प्रयत्न करें कि दूसरी बार जन्म न लेना पड़े। ये कब होगा, जब हम एक मिनट के लिए भी संसार का भाव छोड़ सकेंगे। ईश्वर को जानने के लिए पहले अपने को जानना पड़ेगा। ईश्वर का कभी अभाव नहीं होगा।

जैसे छोटा बच्चा अपनी सभी बातें, सब प्रकार से अपनी माँ को बताता है, तब माँ सब समझ जाती है। वैसे ही जब हमारा मन संसार की भोग की ओर जाने लगे, तब हमें भगवान को अपने भाव में पुकारना चाहिए। शरीर, मन को स्वस्थ रखने के लिये हमें संतुलित आहार करना है और अपने को संयमित रखना है। यदि अधिक भोजन किया, तो शरीर की सब शक्तियाँ शिथिल हो जाती हैं। मन में आलस आता है, मोटापा आता है, मन चंचल होता है। हमें विवेक से काम लेना चाहिये और भोग के परिणाम को सोचना चाहिए। केवल पूजा-पाठ किया, यह आध्यात्मिक जीवन नहीं है। आध्यात्मिकता इसमें है कि गुरु ने जैसे हमें बताया है, वैसा आचरण कर रहे हैं या नहीं।

हमारा मन संतुलित है कि नहीं, हमें यह देखना चाहिए। हम कई इन्द्रियों के द्वारा भिन्न-भिन्न भोग में रस लेते हैं, सुख लेते हैं, पर बाद में हम बहुत पछताते हैं। हमें बहुत दुख होता है। इसलिए मन को संतुलित रखें और सदा सावधान रहें। हमें आत्मपरीक्षण करना है। हमें अपने सामने ऊँचा आदर्श रखना चाहिए। जो मनुष्य इंद्रियों का दास है, उसे पशुओं की योनि मिलती है।

सत्संग से निःसंगता आती है। सत्संग करके हम निःसंग हो जाते हैं। भगवान ने हमें इन्द्रियनिग्रह की शक्ति दी है, लेकिन वह शक्ति हमें कड़वी लगती है। सत्संग सभी प्रकार की दुर्बलताओं को दूर करता है। जो लोग शुरू से संयत जीवन बिता रहे हैं, उनका संग करना है। सत्संग से हमारी बुरी वृत्तियाँ छूट जाती है।

यह ध्यान रखना है कि इष्ट ने कृपा कर मेरे पास जो शक्ति दी है, उस शक्ति से मैं बुरी आदतों को छोड़ सकता हूँ। जब हमारा विवेक जग जाता है, तो हमारे लिये अच्छे विचारों की पूर्ति करता है। संयम की शक्ति दृढ़ करने का उपाय है आत्मनिरीक्षण करके भगवान के पास प्रार्थना करना है।

शेष भाग पृष्ठ ३७४ पर

कमिंग विथ ब्रदर – दुर्गावती

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

साइमन कमीशन का विरोध करते हुए 'पंजाब केसरी' लाला लाजपत राय की लाठी-चार्ज में जब मृत्यु हो गई थी, तब उनकी मृत्यु का बदला लेने के लिए १० दिसम्बर, १९२८ को लाहौर में क्रान्तिकारियों की एक बैठक बुलाई गई। इस बैठक की अध्यक्षता दुर्गा देवी ने की। दुर्गा देवी ने बैठक में उपस्थित सभी क्रान्तिकारियों से पूछा, आप में से कौन स्कॉट की हत्या करने का उत्तरदायित्व ले सकता है? सुखदेव यह कार्य अकेले करना चाहते थे, लेकिन भगत सिंह, राजगुरु, चन्द्रशेखर आज़ाद और जयगोपाल को उनकी सहायता के लिए चुना गया।

दुर्गा देवी का जन्म ७ अक्तूबर, १९०७ को शहजादपुर, प्रयागराज के न्यायाधीश बाँके बिहारीलाल भट्ट के घर हुआ। सन् १९१८ में उनका विवाह 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' के घोषणापत्र लिखने वाले प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी क्रान्तिकारी भगवती चरण वोहरा से हुआ।

क्रान्तिकारियों की प्रमुख सहायिका के रूप में

१७ दिसम्बर, १९२८ को भगत सिंह और राजगुरु ने अँग्रेज अधिकारी सैंडर्स को मारकर लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला ले लिया। तीन दिन बाद सुखदेव भगवती चरण वोहरा के घर गए और दुर्गा देवी ने उन्हें ५०० रुपए दिये। दुर्गा देवी लाहौर के महिला कॉलेज में हिन्दी की अध्यापिका थीं। सुखदेव ने उनसे कहा, कुछ लोगों को लाहौर से बाहर निकालना है। क्या आप उनके साथ लाहौर से बाहर जा सकती हैं?

२० दिसम्बर को भगत सिंह एक ओवरकोट पहन कर अफसर जैसी वेशभूषा में ताँगे पर सवार हुए। इस यात्रा के लिए भगत सिंह का नाम रणजीत और दुर्गा देवी का नाम सुजाता रखा गया था। दुर्गा देवी उनके साथ उनकी पत्नी के रूप में यात्रा कर रही थीं। भगत सिंह की गोद में दुर्गा देवी का तीन साल का पुत्र था। राजगुरु उनके सहायक के वेष में थे।

लाहौर पुलिस ने भगत सिंह को ढूँढ़ने के लिए ५०० सुरक्षाकर्मी तैनात कर रेलवे स्टेशन को छावनी जैसा बना दिया था। जब ये लोग अपने डिब्बे में पहुँचे, तो एक पुलिसकर्मी ने अपने साथी से कहा, 'ये लोग बड़े अफसर हैं, जो अपने परिवार के साथ यात्रा कर रहे हैं।' राजगुरु इन दोनों के नौकर बन कर तीसरे दर्जे के डिब्बे में यात्रा कर रहे थे। लाहौर स्टेशन से वे देहरादून एक्सप्रेस द्वारा अँग्रेज अफसरों की निगरानी के बावजूद भी निकल आए।

कलकत्ता तार

प्रथम श्रेणी के डिब्बे में यात्रा करते हुए दुर्गा देवी और उनके सहयोगियों को एक क्षण के लिए भी नहीं लगा कि उन पर नजर रखी जा रही है। गाड़ी के कानपुर पहुँचने पर तीनों ने कलकत्ता के लिए ट्रेन पकड़ी। इस बीच जासूसों को चकमा देने के लिए भगत सिंह साहब के रूप में चाय पीने के लिए लखनऊ के चारबाग स्टेशन पर उतरे। नौकर बच्चे का दूध लेने के लिए चला गया। दूध देने के बाद राजगुरु अलग दिशा में चले गए। यहीं से दुर्गा देवी ने अपनी सहयोगी सुशीला दीदी को कलकत्ता तार भेजा, जिसमें लिखा था 'कमिंग विथ ब्रदर – दुर्गावती।' उन दिनों दुर्गावती के पति भगवती चरण वोहरा सुशीला दीदी के पास ही रह रहे थे। वे दोनों तार पाकर आश्चर्यचकित थे कि ये दुर्गावती कौन है, जो अपने भाई के साथ कलकत्ता आ रही है।

सुशीला दीदी और भगवती चरण वोहरा २२ दिसम्बर, १९२८ की सुबह दुर्गा देवी को लेने हावड़ा स्टेशन पहुँचे। उन दिनों भगवती चरण वोहरा रेलवे स्टेशन में कुली के वेष में दाढ़ी बढ़ाए हुए थे। वे अपनी पत्नी दुर्गा, बेटे शची और भगत सिंह को देख कर आनन्दित हो गए। अचानक उनके मुँह से निकला, 'दुर्गा तुम्हें आज पहचाना।'

क्रान्तिकारी कार्य

क्रान्तिकारियों को जेल में कोडवर्ड में सन्देश भेजने के लिए वे जेल में भेजे जाने वाले कपड़े से तुरपन खोल देती थीं। मदार के दूध और प्याज के रस से कागज पर सन्देश लिख कर भेजती थीं। दूध या रस सूखने के बाद कागज कोरा दिखता था जिसे जेल में उनके क्रान्तिकारी आँच में आसानी से पढ़ते थे।

एक बम विस्फोट में पति भगवतीचरण वोहरा की मृत्यु के बाद दुर्गा देवी ने एक मुस्लिम महिला के वेष में केवलकृष्ण नामक अपने एक परिचित के घर पर १५ दिनों तक निवास किया। आसपास के लोगों से कहा गया कि उनके शौहर केवलकृष्ण के मित्र हैं और उस समय हज पर गए हैं और वे पर्दानशीं हैं। जब तक वे नहीं आ जाते, वे उनके साथ रहेंगी। दुर्गा देवी दो बार जयपुर से अपने दल के सदस्यों के लिए पिस्तौल और रिवॉल्वर लेकर आईं थीं और अँग्रेज पुलिस को उन पर कभी भी सन्देह नहीं हुआ था। भगत सिंह को कलकत्ता छोड़ने के बाद दुर्गा देवी लाहौर वापस लौट आईं थीं और अपने अध्यापन कार्य में व्यस्त हो गईं थीं।

सार्जेंट टेलर की हत्या

सन् १९३० में चन्द्रशेखर आज़ाद ने दुर्गा देवी, विश्वनाथ वैशम्पायन और सुखदेव को पुलिस कमिश्नर लार्ड हैली की हत्या करने के लिए मुम्बई भेजा। लैमिंग्टन रोड के पुलिस स्टेशन के पास उनकी मोटर कार खड़ी रही। उन्हें मालाबार हिल की ओर से एक कार आती दिखाई दी। उन्हें लगा कि कार पर गवर्नर का झंडा लगा है। कार से एक अँग्रेज अफसर निकला। दुर्गा देवी और सुखदेव ने तुरन्त गोलियाँ चलाईं। गोलीबारी में सार्जेंट टेलर और उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। घटना के तुरन्त बाद दुर्गा देवी और सुखदेव कानपुर के लिए रवाना हो गए।

हैली की जगह सार्जेंट और उसकी पत्नी की हत्या से दुर्गादेवी और उनके सहयोगियों से चन्द्रशेखर आजाद क्रोधित हो गए थे। लेकिन कुछ देर के बाद आज़ाद शान्त हो गए।'

भगत सिंह से भेंट

जिस दिन भगत सिंह ने सेण्ट्रल असेम्बली में बम फेंका, दुर्गा देवी उनसे विशेष रूप से मिलने दिल्ली गईं थीं। सयालकोट में दुर्गा देवी को एक पत्र द्वारा अपने पति का सन्देश मिला कि वे सुशीला दीदी के साथ दिल्ली पहुँच जाएँ। वे पहले लाहौर और वहाँ से दिल्ली आयीं। सुशीला दीदी ने अपनी उंगली काटकर लहू से भगत सिंह का तिलक किया। उस समय उन्हें बिलकुल ज्ञात नहीं था कि भगत सिंह क्या कार्य करने जा रहे हैं। उन्हें केवल यह आभास था कि वे किसी 'मिशन' के लिए जा रहे हैं। एसेम्बली के पास पहुँचने पर उन्होंने देखा कि वहाँ पुलिस ही पुलिस थी। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को एक पुलिस गाड़ी में बैठाकर ले जाया जा रहा है। जैसे ही गोद में बैठे उनके बेटे शची ने भगत सिंह को देखा वह जोर से चिल्लाया 'लम्बू चाचा'। भगत सिंह ने भी शची की आवाज सुनी और वे एक क्षण में उनकी आँखों से ओझल हो गए।

फाँसी की सजा रुकवाने के लिए महात्मा गाँधी से भेंट

भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को मृत्यु दंड से रुकवाने के प्रयास में दुर्गा देवी महात्मा गाँधी से मिलने दिल्ली गईं। यद्यपि भगत सिंह फाँसी की सजा रुकवाने के विरुद्ध थे। दुर्गा देवी ने गाँधीजी को कहा कि वे भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु की फाँसी रुकवाने के लिए प्रयास करें। उन्होंने गाँधीजी को चन्द्रशेखर आजाद का वह सन्देश भी दिया कि यदि वे इन तीनों को मृत्यु दण्ड से बचा सकें, तो क्रान्तिकारी उनके सामने आत्मसमर्पण कर देंगे, लेकिन गाँधीजी ने इस प्रस्ताव को नहीं माना। गाँधीजी का उत्तर दुर्गा देवी को पसन्द नहीं आया और वे उन्हें नमस्कार कर लौट आईं।

आत्मसमर्पण

भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु और चन्द्रशेखर आज़ाद की मृत्यु के बाद दुर्गा देवी ने आत्मसमर्पण करने का निर्णय लिया। पुलिस ने उनके निवासस्थान से उन्हें गिरफ़्तार कर लिया।। एसएसपी जैंकिन्स ने दुर्गा देवी को धमकाते हुए कहा, 'तुम्हारे साथियों से हमें सब पता चल चुका है। तुम्हारा सारा रिकार्ड हमारे पास है।' उनके विरुद्ध कोई प्रमाण न मिल पाने के कारण पुलिस ने उन्हें जेल से रिहा कर दिया, लेकिन आगामी तीन वर्षों तक उनके लाहौर से बाहर जाने पर रोक लगा दी गई।

सन् १९३६ में दुर्गा देवी ने लाहौर से गाज़ियाबाद आकर प्यारेलाल गर्ल्स हाई स्कूल में पढ़ाना प्रारम्भ किया। उन्होंने सन् १९४० में लखनऊ मांटेसरी स्कूल की स्थापना की। बाद में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इसके भवन का उद्घाटन किया। अप्रैल, १९८३ में उन्होंने विद्यालय से अवकाश ले लिया क्योंकि वे अस्वस्थ रहने लगी थीं। १५ अक्तूबर, १९९९ को दुर्गा देवी ने परलोक गमन किया। ○○○

मन्दिर शताब्दी विशेष

राष्ट्र-निर्माण में मन्दिरों का महत्त्व

साकेत विहारी पाण्डेय

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय

(इस वर्ष २०२४ में स्वामी विवेकानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की बेलूड़ मठ स्थित मन्दिर स्थापना की शताब्दी के उपलक्ष्य में मन्दिरों से सम्बन्धित आलेख-शृंखला प्रकाशित की जा रही है।)

राष्ट्र, राष्ट्र निर्माण, मन्दिर और मन्दिरों का महत्त्व – ये चार विषय प्रस्तुत आलेख के विवेच्य विषय हैं। राजनीतिक रूप से एकीकृत, भौगोलिक रूप से सीमाबद्ध और सांस्कृतिक रूप से एक सीमा तक समायोजित जनों की इकाई को आधुनिक समय में राष्ट्र की संज्ञा प्राप्त है। यह परिभाषा मानक बिन्दुओं पर त्रुटिहीन नहीं है, यहाँ तक कि राष्ट्र के लिए दी गई कोई भी परिभाषा मानक बिन्दुओं पर त्रुटिहीन नहीं है। इसका कारण है पश्चिम में राष्ट्र-राज्यों के उदय से निःसृत कारणभूत विचार को ही राष्ट्र माना गया और इन्हीं बिन्दुओं को राष्ट्र की परिभाषा मान ली गई, जबकि विभिन्न परिस्थितियों में उदित राष्ट्रों के उदय के विभिन्न कारण थे। समयानुसार नये विचारों की उद्भावना के साथ इस पाश्चात्य मान्यता की परिष्कृति भी हुई। विभिन्न विद्वानों ने बहुत ही कम अन्तरों के साथ राष्ट्रवाद की अपनी विवेचना को प्रस्तुत किया।

आधुनिक समय में राष्ट्रवाद का उदय पाश्चात्य औपनिवेशिक इतिहास से गहराई से जुड़ा है। प्रारम्भ में स्वयं को सशक्त बनाकर विश्व में अपनी धाक जमाने के लिए उपनिवेशों पर आधिपत्य ही इस वैचारिक क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य रहा था। परन्तु कालान्तर में इसी विचारधारा ने उपनिवेशों में राष्ट्रीय चेतना जगाकर उन्हें सशक्त बनाया, एकीकृत किया और स्वयं को पराधीनता से मुक्त करने का वैचारिक आधार प्रदान किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में ही जन्मी एक प्रतिरोधी विचारधारा मार्क्सवाद या साम्यवाद रही, जिसने राष्ट्रवाद के विकल्प के रूप में साम्यवादी राजनैतिक-सामाजिक व्यवस्था का विकल्प सामने रखा। राष्ट्रवाद की व्याख्या इस धारा के विचारकों ने नस्लवाद, प्रजातिवाद, पूँजीवाद और फाँसीवाद जैसी नकारात्मक तत्त्वों के रूप में करके साम्यवाद को एक मानवतावादी विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया, जहाँ

सत्ताहीन, वर्गहीन और सर्वथा स्वतन्त्र सीमाहीन विश्व की युटोपियाई संकल्पना थी। इन्होंने विश्व के जनों को मात्र दो वर्गों में विभाजित किया था – पूँजीपति और मजदूर अर्थात् शोषक एवं शोषित। भविष्यवाणी थी कि शोषित जनक्रान्ति के माध्यम से शोषक से सत्ता हथिया लेंगे और तब वर्गहीन समाज की स्थापना हो जाएगी। मजे की बात यह है कि जिस हिंसा के लिए इन्होंने विपक्षी विचारधारा को कठघरे में खड़ा किया, उसी हिंसा से इन्हें कोई आपत्ति नहीं है। वैदिक ज्ञानकाण्ड के गहरे अधीत और स्वामी विवेकानन्द की वैचारिकी से जुड़े शोधार्थी श्री बृजेश कुमार मिश्र ने बातों ही बातों में इस घात-प्रतिघात का बड़ा ही सुन्दर निष्कर्ष दिया था – ये दोनों वस्तुतः सत्ता के लिए ही संघर्ष कर रहे हैं। सत्ता के अतिरिक्त इनमें और कुछ भी देखना मूर्खता है। फाँसीवाद, पूँजीवाद, नस्लवाद का डर दिखाकर इन्होंने राष्ट्रवाद को मानवता विरोधी तो बताया, लेकिन अपना इतिहास देखना भूल गए। रूस में स्टैलिन द्वारा करवाई गई हत्याएँ, चीन में माओ द्वारा निर्देशित हत्याकाण्ड, चीन के द्वारा ही वियतनाम में प्रायोजित हत्याकाण्ड तथा अन्यान्य देशों में तख्तापलट के हित प्रायोजित हत्याएँ जैसी दुर्घटनाएँ

साम्यवाद के हिस्से में भी कम नहीं हैं। भारत में नक्सलवाद ऐसी ही हत्याओं का एक दृष्टान्त है।

उपरोक्त दोनों विचारधाराओं का एक सामान्य परिचय इसलिये आवश्यक है कि पाश्चात्य राष्ट्रवाद और राष्ट्रवाद-विरोधी विचार का राष्ट्र-निर्माण में महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप है। आधुनिक समय में राष्ट-निर्माण के कार्य को पाश्चात्य राष्ट्रवाद से जोड़कर भारत में राष्ट्रविरोधी गतिविधियों को तार्किक आवरण पहनाया जाता है। कभी यह कह कर कि भारत कभी राष्ट्र नहीं था, तो कभी यह कि भारत विभिन्न राष्ट्रीयताओं का समूह है, तो कभी यह कहा जाता है कि भारत राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में है अर्थात् अभी यह राष्ट्र नहीं है। राष्ट्रीय संवर्धन की प्रक्रिया के लिये सम्पादित कार्यों को लांछित कर राष्ट्रीय सशक्तिकरण की प्रक्रिया के प्रति देश में नकारात्मक वातारण बनाकर वामपंथी अपने विदेशी विचारों का परिचय देते रहते हैं।

वामपन्थी पहले धर्म का और धार्मिक प्रतीकों का विरोध करते हैं और उसी गति से धर्मप्राण रही भारतीय मनीषा और ऐतिहासिक प्रगतियों को झूठलाकर देश की प्रजा को अपने ही इतिहास के विरुद्ध खड़ा कर देते हैं। सामाजिक सशक्तिकरण के स्थान पर नाना प्रकार के धार्मिक-सामाजिक अन्तर्भेद को जन्म देकर, उसे पोसकर इस देश के प्रति उनकी निष्ठा को ही परिवर्तित कर देते हैं। जब प्रजा अपने देश की समृद्ध परम्परा के ही विरुद्ध रहेगी, तो देश के प्रति उसका ममत्व क्यों जागेगा? यही कारण है कि वामपंथ राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में बाधक तत्त्व है। अभी-अभी राम-मन्दिर निर्माण और देश में राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण के वातावरण में वे कहते आये कि मन्दिर के स्थान पर हॉस्पिटल और विद्यालय बनना चाहिए, क्योंकि देश में मन्दिर बहुत हैं। लेकिन देश में हॉस्पिटल और स्कूल भी बहुत हैं। ऐसे अनेक लुभावने लगनेवाले तर्कों के सहारे वे लोग भारतीय संस्कृति की रीढ़ रही धार्मिकता और उसके संस्थानों को लांछित करते रहे हैं। तथ्यहीन और झूठा इतिहास अपने एजेण्डे के अन्तर्गत गढ़कर इन्होंने पूरे देश की जनता को संस्कृति-बोध से च्युत करके राष्ट्रीय भावना से हीन करने का अपकर्म किया है। खैर, यह विषय अपने आप में स्वतन्त्र और सुदीर्घ है। हमें एक प्रतिरोधी विचार के नाते उनसे परिचय और इनकी कार्य शैली के साथ इनके इतिहास का भी ज्ञान होना चाहिए, ताकि निमाण की प्रक्रिया के बाधक तत्त्वों से सावधान रहा जा सके।

जन और राष्ट्र

'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है' का अर्थ है कि जीवन की आवश्यकताएँ उसे अन्य मनुष्यों के संसर्ग में लाती हैं। यह साहचर्य परिवार, समाज से बढ़ते हुए राष्ट्र के स्तर तक आता है, जो आत्यन्तिक रूप से सम्पूर्ण विश्व को भी एक परिवार ही स्वीकार करता है। किसी भी मानव समुदाय का आचार-विचार और व्यवहार उसके पड़ोसी अथवा सन्निकट मानव समुदाय से अधिक मिलते हैं। अत: देखा जाये, तो सम्पूर्ण विश्व की एक रैखिक संरचना को सिद्ध करते हैं। परन्तु यह रेखा किसी बड़े विभाजक के हेतु के कारण टूटती है और तब किसी समुदाय का अपने आसन्न समुदाय के साथ साहचर्य का भाव न रहकर सुदूर समुदाय के साथ अधिक निकटता का अनुभव करता है। भारतवर्ष के सन्दर्भ में यह बड़ा विभाजक है धर्माभिमान। इसके कारण भारतीय संस्कृति की एकता के बाधक तत्त्व के रूप में अनेक विभाजनकारी नियम दिखलायी पड़ते है।

वर्तमान भारत की आत्मा धर्मप्राण संस्कृति ही है और भारत अपने आचार, विचार, व्यवहार और संस्कार को वेद-पुराणोक्त ईश्वर से नि:सृत और उन्हीं में समाहित मानता है। व्यापक वैविध्य को स्वयं में समाहित करनेवाला भारत यदि अपने भूगोल को किसी एक सूत्र में प्रबलता से जोड़े हुए है, तो वह सूत्र धर्म का ही है और वह धर्म है सनातन वैदिक धर्म। यह बात तब और स्पष्टतर हो जाती है, जब धर्म-विग्रह आदिशंकराचार्य जी ने चारों दिशाओं में सनातन धर्म के कुशल प्रसार के लिये चारों दिशाओं में चार पीठों की स्थापना की। ये चार पीठ केवल सनातन धर्म के ही प्रतिहारी नहीं हुए, अपितु एक राष्ट्र के रूप में भारत के बोध के प्राचीन साक्ष्य भी उपलब्ध करवाते हैं। अखण्ड भारत की संकल्पना का आधार भी मन्दिर ही हैं। भारतीय भू-विस्तार को द्योतित उसका धर्म करता है, जो सदैव इतिहास में राजनीति के साथ रहा है। धर्म की विद्यमानता धार्मिक संस्थान अर्थात् मठ एवं मन्दिर ही सिद्ध करते हैं। आज जहाँ-जहाँ मन्दिर के साक्ष्य उपलब्ध हैं, इतिहास उसे हम भारतीयों के पूर्वजों की कर्मभूमि सिद्ध करता है। अत: राष्ट्र का आवश्यक सबसे पहला तत्त्व भूमि का निर्धारक भी हमारे पूर्वजों द्वारा स्थापित मन्दिर ही हैं।

राष्ट्र-निर्माण

राष्ट्र के दो घटक – जन और भू, का निरन्तर उन्नयन ही राष्ट्र-निर्माण कहलाता है। एक सीमा के बाद परराष्ट्र की सीमा भी होती है। अत: उसके बाद भू-सीमा का विस्तार अन्याय होता है, परन्तु जन का उन्नयन असीम है। मनुष्य की सांसारिक और आध्यात्मिक उन्नति की कोई सीमा नहीं है। ऊँचे से ऊँचे जीवन मूल्यों की नित्य स्थापना किसी भी राष्ट्र की उच्चता को निर्धारित करती है। अर्थ सम्पन्नता की रीढ़ है, तो बलिदानी ससैन्य प्रजा उसकी स्थिरता है। आध्यात्मिक केन्द्र होने के कारण नैतिक आचरण में उच्चता मन्दिर का मुख्य प्रभाव होता है, तीर्थ यात्रा और आसपास सहजीवन में छोटे-छोटे उद्योग और दुकानें अर्थकेन्द्र भी होते हैं। हिन्दू धर्म के देवताओं की लीला-भूमि होने के नाते भारत देवताओं के लिये अतीव प्रिय है। मन्दिर में स्थापित प्रतिमा लोक-रक्षक भी कही जाती है। प्रजा उनके संरक्षण में जीवन-यापन करती है। यहाँ तक कि राजा अपने राज्य के संरक्षक होते हैं, किन्तु वास्तविक राजा उन्होंने अपने देवता को बना रखा है। मेवाड़ के महाराणा अपने राज्य के दीवान होते हैं। वहाँ के वास्तविक अधिपति श्री एकलिंग जी महाराज हैं।

राष्ट्र–निर्माण में मन्दिरों का महत्त्व

इतिहास खंड

यदि सभ्यता नदियों के किनारे विकसित हुई है, तो भारतीय संस्कृति मन्दिरों की सन्निधि में पल्लवित हुई है। भारतीय जनों के हृदय में बसे ईश्वर उन्हें उनके प्रत्येक उत्थान-पतन में मन्दिर की ओर खींचते थे। नि:संदेह अभी भी। आज के समय में जिन्हें हम आधारभूत सुविधाएँ कहते हैं, पुराने समय में वे मन्दिरों द्वारा प्रदत्त थे। शिक्षा, चिकित्सा, दरिद्र-नारायण के लिये भोजन, सामुदायिक केन्द्र, न्यायालय आदि मन्दिरों में ही थे या मन्दिरों द्वारा संचालित थे। कहा जाता है कि मन्दिर प्राचीन समय में लोक कल्याण के केन्द्र थे। मन्दिरों का कार्य यहीं समाप्त नहीं हो गया था, अपितु इससे आगे बढ़कर मन्दिर कला-संस्कृति के संरक्षक भी होते थे। नृत्य, कला, चित्रकला, शिल्प और काव्य-साहित्य से शृगांरित मन्दिर इनके कालाकारों के आश्रय-स्थल होते थे। वास्तुशिल्प के लिए सामान्य भवनों का निर्माण भी एक अवसर था, परन्तु प्रतिमा-निर्माण के लिए तो मन्दिर ही एकमात्र आश्रय स्थल था। देवता के प्रीत्यर्थ साहित्य, नृत्य, संगीत आदि पूजा के अनिवार्य अंग थे। अत: मन्दिरों के अनुशासन में इनका संरक्षण सामान्य व्यवस्था थी, जो इस्लामी आक्रमण से छिन्न-भिन्न हो गई।

शिक्षा

भारत में प्राचीन समय में उन्नीसवीं शताब्दी तक शिक्षा; विशेषकर प्राथमिक शिक्षा गुरुकुलों और मन्दिरों के ही संरक्षण में थी। लगभग प्रत्येक मन्दिर के साथ सटा एक गुरुकुल होता था। यदि गुरुकुल मन्दिर के आश्रित नहीं होते थे, तो गुरुकुल में ही मन्दिर की स्थापना हो जाती थी। शिक्षा के लक्ष्य थे चार पुरुषार्थ यथा – धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष, जिनमें सभी का धर्मानुशासित होना ही जीवन का परम ध्येय माना जाता था। अत: शिक्षा में प्रारम्भ से ही धर्म की गहरी नींव डालने के लिए देव-सान्निध्य एक अनुकूल व्यवस्था होती थी। वैसे भी भारतीय शिक्षा कभी भी धर्म के विपरीत नहीं रही है। भारतीय शिक्षा-व्यवस्था अध्ययन के लिये निर्धारित वेद, वेदान्त ज्योतिष, व्याकरण, साहित्य, दर्शन, गणित, इत्यादि सभी के नियामक ईश्वर को और अनुशासक धर्म को स्वीकार कर ही आगे बढ़ता है। ऐसे में शिक्षा के अधिष्ठान मन्दिरों में स्थापित हों, तो कोई आश्चर्य नहीं रह जाता है। समस्या आधुनिक समय में होती है, जब पाश्चात्य रीति-नीति पीड़ित मानसिकता ने बिना सनातन हिन्दू धर्म की प्रकृति को समझे ही धर्मनिरपेक्षता के अन्धानुकरण में शिक्षा में धर्म का परित्याग ही ध्येय घोषित कर दिया। ऐसे में शिक्षा की व्यवस्था मन्दिर में कैसे कर सकते हैं। मन्दिर धर्म के अधिष्ठान होकर धर्म-विरोध की शिक्षा में कैसे सहयोग कर सकते हैं। परन्तु फिर भी समाज से प्राप्त दान का सदुपयोग करने हेतु कई मन्दिर शिक्षा को संचालित करते हैं। जैसे तिरुपति देवस्थानम् ट्रस्ट, गजानन महाराज संस्थान, रामकृष्ण मिशन आदि धर्मार्थ संस्थान प्रारम्भ से लेकर उच्च शिक्षा तक की व्यवस्था करते हैं। तकनीकी एवं व्यावसायिक कौशल की शिक्षा भी ये धर्मार्थ संस्थान करते हैं। आजकल विद्यालयी एवं अन्य शिक्षण संस्थानों की फीस को लेकर आये दिन विद्यार्थियों की शिकायतें प्रदर्शनों में बदलती रहती हैं। वहीं मन्दिरों एवं धर्मार्थ संस्थाओं की सनातन शिक्षा पद्धति में प्रारम्भ से लेकर उच्च शिक्षा; सभी नि:शुल्क होती थी। मुसलमानों द्वारा मध्यकाल में मन्दिरों

एवं ब्राह्मण व्यवस्था को नृशंसता पूर्वक मिटा दिये जाने के बाद ये व्यवस्था शनैः शनैः समाप्त होती गई। फिर भी ब्राह्मणवृन्द यजमानों के व्यक्तिगत दान और दक्षिणा पाकर किसी प्रकार छोटे-छोटे स्तर पर बालकों को शिक्षा देते रहे। संस्थान के अभाव ने उच्च शिक्षा को लगभग समाप्त कर दिया। विक्रमशिला और नालंदा विश्वविद्यालय का सर्वनाश सर्वविदित ही है। श्री के. ए. नीलकंठ शास्त्री जी ने दक्षिण भारत का इतिहास लिखते हुए तत्कालीन शासकों के अत्याचार को रेखांकित करते हुए लिखा है कि तत्कालीन शासकों ने मन्दिरों को तो तोड़ा ही, वहीं मन्दिरों के साथ लगे गुरुकुल को भी तोड़ा तथा रहनेवाले गुरु और बटुकों की हत्या कर दी। ...मन्दिरों का निर्माण कुफ्र घोषित हो गया था। मन्दिर केवल तोड़े जा सकते थे। ...तथापि शिक्षा के आश्रय मंदिरों के नष्ट हो जाने के बाद भी कुछ गुरु और कुछ शिक्षार्थी ज्ञान की आराधना करते रहे।

चौथी शताब्दी के एक शिलालेख में द्रष्टव्य है कि प्रत्येक मन्दिर से जुड़ा एक विद्यालय होता था, जहाँ विद्यार्थी और विद्वान के लिए निःशुल्क भोजन एवं आवास की सुविधा उपलब्ध होती थी। दक्षिण भारत में मन्दिरों के साथ जुड़े ये विद्यालय सलाई कहलाते थे और उत्तर भारत में मठ। मध्यकाल में जब भक्ति आन्दोलन अपनी सर्वोच्च लोकप्रियता के दौर में था, तो शिक्षा के संस्थान को ब्राह्मणेतर लोगों ने संचालित किया। यहाँ दी जानेवाली शिक्षा में धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त कला, वाणिज्य, चिकित्सा, साहित्य सबकी शिक्षा दी जाती थी। Hartmut Scharfe ने अपनी पुस्तक From Temple Schools to Universities, in Education in Ancient India : Handbook of Oriental Studies में लिखा है कि मन्दिर वाद-संवाद के केन्द्र रहे हैं। यहाँ मार्शल आर्ट की भी शिक्षा दी जाती थी।

चिकित्सा

कैनेथ जिस्क प्राच्य विद्या और प्राचीन चिकित्सा व्यवस्था के मान्य विद्वान और प्रोफेसर हैं, उन्होंने अपनी पुस्तक Asceticism and Healing in Ancient India. Medicine in the Buddhist Monastery में लिखा है – दसवीं शताब्दी तक भारतीय मंदिरों के धार्मिक और शैक्षणिक सुविधा के अतिरिक्ति चिकित्सा-सुविधा उपलब्ध करवाने के अकाट्य प्रमाण हैं। बंगाल में प्राप्त (९३० ईसवी) एक अभिलेख के अनुसार एक वैद्य को दो मठों में चिकित्सा करने का कार्यभार था। तमिलनाडू के एक विष्णु मन्दिर से प्राप्त अभिलेख के अनुसार (१०६९ ईसवीं), वहाँ मन्दिर से लगे एक बड़े चिकित्सा केन्द्र के प्रमाण मिले हैं। विवरणों में चिकित्सक, परिचारक, रोगी, औषधि और शय्या की संख्या का स्पष्ट उल्लेख है। ऐसा ही एक अभिलेख आन्ध्र प्रदेश से प्राप्त हुआ है, जिनमें प्रसूतिशाला संचालन के भी प्रमाण उपलब्ध हैं। बौद्ध धर्म के पतन के बाद ऐसी व्यवस्था का उत्तरदायित्व हिन्दू मन्दिरों पर आ गया, जिसका हिन्दू मन्दिरों ने समुचित प्रकार से निर्वहण किया। जॉर्ज मिशेल ने अपनी पुस्तक The Hindu Temple : An Introduction to Its Meaning and forms में लिखा है – निःशुल्क भोजन, शिक्षा और चिकित्सा मन्दिरों के द्वारा संपादित प्रत्यक्ष समाज-कल्याण के कार्य थे।

भोजन

तीर्थ यात्रियों के लिए निःशुल्क अन्नक्षेत्र आज भी संचालित किए जाते हैं। रहने के लिये धर्मशाला और भोजन तीर्थ में मुख्य व्यवस्था मानी जाती है। तीर्थ के न्यासियों के द्वारा इसकी समुचित व्यवस्था की जाती थी। आज भी यह व्यवस्था निर्बाध रूप से संचालित है। सनातन हिन्दू धर्म में भोजन करवाना पुण्य कार्य माना गया है। अतः दानकर्ता पुण्य लाभ के लिए अन्न-दान करते थे, जिससे तीर्थयात्रियों के साथ-साथ दरिद्र-नारायण को भी भोजन की सुविधा प्राप्त होती थी, जो आज भी यथावत है।

न्यायालय

लगभग सभी प्राच्यविद् एकमत हैं कि भारतीय मन्दिर समाज के लिए सामुदायिक केन्द्र के रूप में कार्य करते थे। जिसमें न्याय की व्यवस्था भी एक कार्य था। बहुधा राजा को लोकपक्ष में निर्णय करना होता था, इसलिये मन्दिर के मंडप भाग में न्यायालय की व्यवस्था की जाती थी। स्थानीय प्रशासन में भी किसी संवेदनशील निर्णय में, ईश्वरीय आस्था के कारण मन्दिर में लिये गये न्याय-निर्णय विश्वनीय माने जाते थे।

संगीत

भारतीय संगीत का ज्ञात इतिहास वैदिक ऋचाओं के गायन से प्राप्त होता है। यज्ञ में आहुति के निमित्त ऋग्वैदिक ऋचाओं के पाठ के साथ-साथ साम गायन का भी प्रावधान

होता था। शनैः शनैः संगीत में हुए विशेषीकरण के कारण साम-गायन के साथ-साथ गायन में दो वर्ग विभेदीकृत हुए, यथा – मार्गी तथा देशी। मार्गी संगीत विशुद्ध वैदिक स्वर सिद्धान्तों के अनुसार चलते थे, जो यज्ञादि में अनिवार्य थे तथा देशी संगीत लोक में प्रचलित मार्गी संगीत का ही किंचित् विकृत रूप था। कालान्तर में जब वैष्णव धर्म का प्रसार हुआ, तब विष्णु की पूजन-पद्धति में संगीत एक अनिवार्य अंग बन गया। मुसलमानों का आगमन भारतीय संगीत के लिए भी विनाशकारी सिद्ध हुआ। मन्दिर और मन्दिर-तंत्र समाप्त होने से संगीत के प्रदर्शन स्थल समाप्त होते गये। राजकीय शालाओं में संगीत अवसर और प्रसार की दृष्टि से सीमित हुआ। इनसे जो बचे, उन्हें मुसलमानों ने कुफ्र के नाम पर काट डाले। अवसर, आश्रय और प्रशिक्षक की कमी, भय का वातावरण, इन सभी परिस्थितियों ने एक साथ भारतीय संगीत का गला घोंट दिया। भारतीय संगीत का उद्धार भी हुआ। भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि ने साधुओं-संन्यासियों में संगीत मर्मज्ञों को सिंचित किया। भक्ति के आराधक अष्टछाप के कवि सिद्धहस्त संगीत थे। गोपालजी के मन्दिर में अष्टयाम साधना में संगीत की स्वर लहरियाँ गूँजती थीं। सूरदासजी समेत आठों भक्त संगीत शिरोमणि थे। उसके बाद स्वामी हरिदास जी जैसे संगीतकार हुए, जिन्होंने विकृत हो चुकी ध्रुपद शैली को अपने आठ शिष्यों के माध्यम से पुनरुज्जीवित किया। ये वृन्दावन में रहते थे। जब औरंगजेब ने वृन्दावन और मथुरा के सारे मन्दिरों को धराशायी कर दिया, तब भगवान कृष्ण की प्रतिमा को बचाकर मेवाड़ में नाथद्वारा में स्थापित किया गया। पूरे राजस्थान में इस तर्ज पर अनेक हवेलियों का निर्माण हुआ, जहाँ भगवान कृष्ण की भक्ति की जाती थी। मुसलमानों से विग्रह बचाने के लिए, उन्हें प्रत्यक्ष मन्दिर में न बिठाकर हवेली में स्थापित किया जाता था। इसी हवेली में भगवान कृष्ण की आराधना में भारतीय शास्त्रीय संगीत की शुद्ध पद्धति संरक्षित रही, जिसे 'हवेली संगीत' कहा गया। कालान्तर में राजाओं की विलास-क्रीड़ा और भारतीय जीवन-शैली में मुसलमानी प्रदूषण प्रवेश करने के कारण और निरन्तर विकृत होती आर्थिक व्यवस्था ने कलाकारों से आश्रयदाताओं को छीन लिया। आश्रयदाता भारतीय संगीत में मुसलमान बादशाहों की कामुक लिप्सा का अनुकरण करने लगे। फलतः संगीत की शुचिता समाप्त होती गई। ...मन्दिरों के सान्निध्य से अलग होने का परिणाम भारतीय संगीत की शुचिता और सुसंस्कृति के लोप में हुआ।

मूर्तिकला

भारतीय मूर्तिकला का स्थान एकमात्र आश्रय मन्दिर ही रहे हैं। क्योंकि मूर्ति केवल भगवान की ही लगाई जानी चाहिए, ऐसी मान्यता है। बौद्ध मठ से लेकर हिन्दू एवं जैन मन्दिर सभी अपनी धार्मिक कथाओं का अंकन अपने मन्दिरों में करवाते थे। दक्षिण भारत में तो यह परम्परा आज भी अविच्छिन्न है, परन्तु उत्तर भारत में इस्लामी आक्रमण के कारण परम्परा भंग हुई और ऐसी कि क्षेत्र कलाकारविहीन हो गया। आज भी उत्तर भारत में मन्दिरों की पुरानी सजावट नहीं हो पाती है। दसवीं-बारहवीं शताब्दी तक उत्तर भारतीय मूर्तिकला सम्पूर्ण सौन्दर्य में शिल्पित मिलता है। परन्तु उसके बाद के भक्ति के आन्दोलन के समय में जब लीलाओं का चित्रण अधिकाधिक हुआ, तब कवियों और कथाकारों के द्वारा राम और कृष्ण की लीलाओं का चित्रण जनमानस में लगभग एकांगी रूप में व्याप्त हो गया था, मूर्तिकला में इसके चित्रण का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। कुछ अपवाद को छोड़कर मराठा काल में सम्भवतः दक्षिण के कलाकारों के द्वारा उत्तर में मराठों ने कुछ मन्दिर बनवाये थे, वहाँ प्रचलित लीलाओं का चित्रण है, परन्तु दसवीं शताब्दी वाली भव्यता और कलात्मक उत्कर्ष का सर्वथा अभाव है। मुसलमानों के बाद देश अंग्रेजों का गुलाम हुआ और धन का अपार निर्गत हुआ, भारतीय संस्कृति और वैभव का पूर्णतः नाश हुआ, तब तो मूर्तिकला का क्या ही कहना !

चित्रकला

भारतीय चित्रकला राजप्रासादों के अतिरिक्त मन्दिरों में ही आश्रय पाती थी। अजन्ता की गुफाओं में चित्रित दीवार भारतीय चित्रकला के उत्कर्ष की उर्ध्वबाहु घोषणा करते हैं। उसके बाद के समय की चित्रकला के साक्ष्य केवल दक्षिण भारत के मन्दिरों में ही मिलते हैं, जहाँ शिव और विष्णु की लीलाओं का सजीव चित्रण हुआ है। आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु में तीसरी से ग्यारहवीं के चित्र विभिन्न मन्दिरों में ही मिले हैं। जिन गुफाओं में चित्र मिले हैं, वे गुफाएँ भी धार्मिक मठ ही हैं, चाहे बौद्ध हों या जैन या हिन्दू। इस्लाम में चित्रकला भी कुछ कुफ्र माना जाता है। अतः इस्लामी बादशाहों का विरोध और भारतीय राज्याश्रय

तथा मन्दिरों के विनाश ने चित्रकला की परम्परा को नष्ट कर दिया। राजस्थान में हिन्दू राज्याश्रय एम.एन. चित्रकला का पुन: उत्कर्ष हुआ, जिन्होंने कृष्ण लीला के चित्रण को अपना विषय बनाया। राज्याश्रय के साथ-साथ चित्रकला के आश्रय मुख्य रूप से हवेलियों में स्थापित भगवान कृष्ण के मन्दिर ही थे। महलों में भी चित्रकला मन्दिरों में होनेवाली चित्रकला की अनुकृति ही थी। कलाकार का ध्येय मुख्य रूप से मन्दिरों की सजावट ही होता था, जो राजमहलों तक भी अपनी पैठ बना लेते थे। आधुनिक काल में यूरोपीय सभ्यता संस्कृति की आँधी में कला और कलाकार के साथ-साथ सैद्धान्तिकी का भी ह्रास हुआ। क्योंकि कला के खरीददार वे धनाढ्य व्यक्ति हुए, जिन्हें अंग्रेजी सभ्यता भाती थी। इस प्रकार यह विदित होता है कि मन्दिरों का विनाश चित्रकला की भारतीय पद्धति के भी विनाश का कारण बना।

वर्तमान खण्ड

वर्तमान समय में संविधान में वर्णित धर्मनिरपेक्षता मन्दिरों के राजकीय निर्माण में बाधा है। परन्तु ऐतिहासिक धरोहरों के रूप में पुराने मन्दिरों का संरक्षण किया जा रहा है। इस कार्य में एक कमी यह है कि जिन मन्दिरों को तोड़कर आक्रान्ताओं ने मस्जिद का रूप दिया, उन्हें उनके मूल स्वरूप में लाने के लिए लम्बी विधिक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। ...किसी देश की अस्मिता को कानून बनाकर पददलित करना, वह भी उन्हीं के लोगों के द्वारा समझ से परे हैं। ये मन्दिर हमारी हिन्दू-संस्कृति की जय-यात्रा के पदचिह्न हैं। इनमें हमारे पूर्वजों की आत्मा बसती है। भारत के वास्तविक वि-औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया इन मन्दिरों को उनके मूल स्वरूप में वापस लाकर ही प्रारम्भ हो सकती है। अन्यथा हम गर्व से सिर उठाकर स्वयं को संप्रभु राष्ट्र कहने लायक नहीं रहेंगे। राष्ट्रीय अस्मिता का वास्तविक उद्घोष सर्वप्रथम परतन्त्रता के सारे चिह्नों को मिटाकर ही हो सकता है। धरातल पर राष्ट्र-निर्माण के पूर्व इसे मानस में निर्मित करना पड़ता है। मन्दिर-मुक्ति की प्रक्रिया, इस मानस-निर्माण की प्रक्रिया है।

आज कुछ भारतीय मन्दिर अपनी विभुता की दृष्टि से अपेक्षाकृत उपेक्षित अवस्था में हैं। सांस्कृतिक पुनर्जागरण के काल में देश पराधीन था, विपन्न था। परन्तु भारत के स्वतन्त्र होते-होते पराधीन मस्तिष्क के विचारकों की बड़ी फौज खड़ी हो गई थी, जिसने अपना इतिहास अंग्रेजों से पढ़ा था, जिन्हें मन्दिर साम्प्रदायिक चिह्न लगते थे। पराधीन मानसिकता से ग्रस्त नेता ने तो सोमनाथ मन्दिर के उद्घाटन में जाने से राष्ट्रपति को भी मना करने का दुस्साध्य प्रयास किया था। जिस मन्दिर के बार-बार टूटने का दृश्य साक्षात् भारत की आत्मा के विखंडित होने की तरह इतिहास में अमिट है, उसके गौरवशाली पुनर्निर्माण से भारतीय राजनीति की दूरी आधुनिक समय में आजाद भारत की गुलाम मानसिकता ही तो है। क्या ऐसे में भारत अपनी सांस्कृतिक आधारभूमि प्राप्त कर पाएगा? जिसकी सांस्कृतिक आधार-भूमि ही यूरोप-अमेरिका से निश्चित होने लगे, क्या वह स्वदेश का स्वाभिमान हो पाएगा? यही कारण है कि स्वतन्त्रता के सत्तर सालों तक भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ कुछ मन्दिर अपवित्र वृक्ष की तरह खड़े हैं। सम्प्रति सांस्कृतिक जागरण के इस दूसरे चरण में जब जनमानस पुन: अपनी जड़ों की ओर लौट रहा है, तब मन्दिरों के वैभव के पुनरुज्जीवित होने की सम्भावना बलवती होती जा रही है। भारत अब पुन: अपनी शुचितापूर्ण मानस को प्राप्त कर सकेगा।

मन्दिर देशवासियों को परस्पर जोड़ने का कार्य कर रहा है

आज भारतीय मन्दिरों की दशा बड़ी विकट है, फिर भी उत्तर और दक्षिण के सुदूर भूगोल को प्रजात्मक रूप से जोड़ने में अपनी महती भूमिका का निर्वाह कर रहा है। उत्तर भारतीय श्रद्धालुओं के लिए रामेश्वर, कन्याकुमारी की यात्रा तथा दक्षिण के श्रद्धालुओं के लिए काशी, अयोध्या, बद्रीनाथ, केदारनाथ, द्वारिका आदि की यात्रा भारत के दोनों छोर की प्रजा को एक-दूसरे से मिलने-जुलने का अवसर प्रदान करती रहती है। मठों, मन्दिरों एवं अन्य धार्मिक अधिष्ठानों के द्वारा आज भी शिक्षण संस्थान, चिकित्सालय, अन्न सत्र, सामूहिक विवाह, वनवासी कल्याण योजना एवं अन्यान्य प्रकार की जन-जागृति विषयक कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। दक्षिण का तिरुपति देवस्थानम् तथा उत्तर में महावीर मन्दिर ट्रस्ट लोक कल्याण के महत् कार्यों के लिए प्रसिद्ध हैं। जहाँ तिरुपति शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का उत्कृष्ट संचालन करने के साथ एक पूरे नगर की नागरिक व्यवस्था का भी संचालन करता है, वहीं महावीर मन्दिर ट्रस्ट, पटना में अन्न-सत्र के साथ नेत्र चिकित्सालय तथा एक अतिशय विस्तृत कैंसर चिकित्सा का संचलान करता

है। स्वामी राम ट्रस्ट द्वारा मेडिकल कॉलेज, अभियान्त्रिकी कॉलेज, चिकित्सालय, योग केन्द्र आदि चलाये जा रहे हैं। इन सबका संचालन देवस्थान को मिले दान के धन से ही होता है। वाराणसी में अन्नपूर्णा मन्दिर सभी को, विशेषकर तीर्थ यात्रियों के लिए नि:शुल्क अन्न-सत्र की सुविधा उपलब्ध करवाता है। संकटोमचन मन्दिर हनुमान जयन्ती के अवसर पर भारतीय शास्त्रीय संगीत का आयोजन करवाता है, जहाँ देश भर से शास्त्रीय संगीत के कलाकार उपस्थित होते हैं। तीर्थ रूपी सांस्कृतिक यात्रा करनेवाले श्रद्धालुओं के लिए सोमनाथ मन्दिर सेवा ट्रस्ट द्वारा अत्यल्प शुल्क में आवास एवं भोजन की सुविधा तो उपलब्ध करवाया ही जाता है।

महावीर मन्दिर ट्रस्ट, पटना

इसके साथ ही साथ तीर्थ-भूमि-दर्शन के लिये वाहन-सुविधा भी उपलब्ध करवाता है। यह सूची आज भी बहुत लम्बी है। दरिद्र हो चुकी हिन्दू प्रजा ने यथाशक्य अपने देश की सेवा की है। धार्मिक भाव से अपने देश की सांस्कृतिक एवं सामाजिक सेवा करने में कहीं भी कोताही नहीं की है। जिस सुविधा के लिए आज हमें हजारों रुपये खर्च करने पड़ते हैं, उन्हें धार्मिक संस्थाओं ने सहज ही उपलब्ध करवाया है।

जनसेवा के ये माध्यम केवल सामाजिक कार्य भर नहीं हैं। समाज को इन सुविधाओं का लाभ उठाते हुए इस बात का ध्यान रहता है कि वे अपने समाज और राष्ट्र के लोगों के सहयोग का लाभ ले रहे हैं। उनके प्रति कृतज्ञता राष्ट्रीय समाज तन्त्र के प्रति कृतज्ञता है, जो उन्हें एक सशक्त समुदाय के रूप में एक-दूसरे से जोड़ती है। उन्हें तीर्थ यात्रा करते हुए इस बात का अनुभव होता है कि देश का कौन-सा भूगोल अपना है। उसके प्रति उनका ममत्व देश के प्रति त्याग एवं बलिदान की भावना से पूर्ण है। हिन्दू देवताओं की लीला-भूमि, भारत-भूमि रही है। अत: उनकी लीला में आसक्त भक्त इस पुण्य-भूमि के प्रति अतिशय श्रद्धावान रहते हैं। इस पुण्य भूमि की धूलि भी शिरोधार्य है। अत: इन देवताओं की मूतियाँ और मन्दिर राष्ट्र के यशस्वी प्रतिमा के मन्दिर हैं, जो उनकी प्रजा को निरन्तर राष्ट्र-सेवा की प्रेरणा देते रहेंगे।

आज जब समाज में नैतिक चरित्र का पतन दृष्टिगोचर हो रहा है, तो उसके उपचार के रूप में हम प्राय: कानून कठोर करने की बात करते हैं। लेकिन क्या हमने कभी यह सोचा है कि कानून की भी सीमा है। कानून हमें निजता के अधिकार के माध्यम से एकान्त में कुछ भी करने की छूट देता है। लेकिन धर्म प्रेरित नैतिक आचरण हर पल हमारे साथ रहता है। यह सदैव व्यक्ति के आचरण को अनुशासित कर उसे नैतिक रूप से पतित होने से उसकी रक्षा करता है, जो समाज में उत्कृष्ट गुणों का संचार कर उसके नागरिकों को उत्कृष्ट प्रजा के रूप में सुसंस्कृत करता है। व्यक्ति को जैसा सान्निध्य प्राप्त होता है, वह वैसा ही आचरण सीखता है। अत: यदि उसे देवताओं के जैसे उच्च मानदण्ड के नैतिक गुणों का सान्निध्य उपलब्ध होगा और वह यदि इन्हें नित्य मनन करना प्रारम्भ करेगा, तो सम्भव है, जिन उच्च मानवीय गुणों की चर्चा विदेशी यात्री भारतीय प्रजा के विषय में कर गये हैं, वैसा गुण हम पुन: प्राप्त कर सकें।

धन के अभाव में मन्दिरों में दिए गये दान का सदुपयोग आर्थिक रूप से अक्षम प्रजा के कल्याण के लिए हो सकता है। लेकिन श्रद्धा का अभाव उन्हें इस व्यवस्था से जुड़े रहने से रोकता है। एक बार पुन: मन्दिरों को कला का आश्रय बनाया जा सकता है तथा कला में जिस प्रकार की शुचिता का समावेश हमारे कला-दार्शनिक चाहते थे, वैसा पुन: किया जा सकता है। इतिहास में दुर्घटनाओं के कारण हमारी मन्दिर-व्यवस्था की संरचना को आघात पहुँचा है। उसे पुन: सुंसंरचित करके राष्ट्र-निर्माण और उसके सशक्तिकरण की दृढ़ आधार-भूमि का निर्माण कर सकते हैं। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (४७)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

सोलह कलाओं वाला वह 'पुरुष' शरीर में ही है

तस्मै स होवाच। इहैवान्त:शरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेता: षोडशकला: प्रभवन्तीति।।६/२।।

अन्वयार्थ – तस्मै (उस सुकेशा से), स: ह उवाच (उन पिप्पलाद ऋषि ने कहा), सोम्य (हे प्रियदर्शन!), स: पुरुष: (वह पुरुष), इह एव (इसी) अन्त:शरीरे (शरीर के भीतर स्थित है), यस्मिन् (जिसमें), एता: षोडशकला: (ये सोलह कलाएँ), प्रभवन्ति (उत्पन्न होती हैं) – इति (ऐसा कहा) ॥२॥

भावार्थ – ऋषि पिप्पलाद ने उन सुकेशा से ऐसा कहा, ''हे प्रियदर्शन, वह 'पुरुष' इसी शरीर के भीतर स्थित है, जिसमें ये सोलह कलाएँ उत्पन्न होती हैं ॥२॥

भाष्य – तस्मै स होवाच। इहैव अन्त:शरीरे हृदय-पुण्डरीक-आकाश-मध्ये हे सोम्य स पुरुषो न देशान्तरे विज्ञेयो यस्मिन्नेता उच्यमाना: षोडशकला: प्राण-आद्या: प्रभवन्ति उत्पद्यन्ते इति षोडश-कलाभि: उपाधि-भूताभि: सकल इव निष्कल: पुरुषो लक्ष्यते अविद्यया इति। तद्-उपाधि-कला-अध्यारोप-अपनयेन विद्यया स पुरुष: केवल: दर्शयितव्य इति कलानां तत् प्रभवत्वम् उच्यते।

भाष्यार्थ – उन्होंने उस (सुकेशा) को बताया – हे सोम्य, वह पुरुष, इस शरीर के भीतर ही, हृदय-कमल के आकाश में विद्यमान है; वह अन्य किसी भी स्थान में जानने योग्य नहीं है; जिस (ज्ञातव्य पुरुष) में प्राण आदि सोलह कलाएँ उत्पन्न होती हैं। वह निष्कल (अखण्ड) पुरुष अविद्या (अज्ञान) के कारण इन उपाधिभूत कलाओं से युक्त प्रतीत होता है। परन्तु कलाओं रूपी उपाधि के अध्यारोप को विद्या के द्वारा दूर करके उस 'पुरुष' को अखण्ड के रूप में दिखाया जाना चाहिये, इसीलिये कलाओं को उससे उत्पन्न कहा जाता है।

भाष्य – प्राण-आदीनाम् अत्यन्त-निर्विशेषे हि अद्वये शुद्धे तत्त्वे न शक्यो अध्यारोपम् अन्तरेण प्रतिपाद्य-प्रतिपादन-आदि-व्यवहार: कर्तुम् इति कलानां प्रभव-स्थिति-अपि-अया आरोप्यन्ते अविद्या-विषया: ; चैतन्य-अव्यतिरेकेण एव हि कला जायमाना: तिष्ठन्त्य: प्रलीयमाना: च सर्वदा लक्ष्यन्ते।

भाष्यार्थ – चूँकि एक अत्यन्त निर्विशेष (निर्गुण), अद्वय, शुद्ध तत्त्व में प्राण आदि (सोलह अवयवों) का अध्यारोप नहीं हो सकता, तथापि प्रतिपाद्य तथा प्रतिपादन आदि में उपयोग हेतु इस (पुरुष) पर अविद्या के विषय-रूप (प्राण आदि) कलाओं की उत्पत्ति तथा स्थिति का भी आरोपण करना पड़ता है; क्योंकि सर्वदा चैतन्य (पुरुष) के तादात्म्य सहित ही कलाओं की उत्पत्ति, स्थिति तथा विलुप्ति देखने में आती है।

भाष्य – अत एव भ्रान्ता: केचिद् – अग्नि-संयोगाद्-घृतम् इव घट-आदि-आकारेण चैतन्यम् एव प्रतिक्षणं जायते नश्यति इति। तत् निरोधे शून्यम् एव सर्वम् इति अपरे। घट-आदि-विषयं चैतन्यं चेतयितु: नित्यस्य आत्मनो अनित्यं जायते विनश्यति इति अपरे। चैतन्यं भूतधर्म इति लौकायतिका:।

भाष्यार्थ – इस कारण कुछ भ्रान्त (क्षणिकवादी बौद्ध) लोग कहते हैं, ''जैसे अग्नि के सम्पर्क में आने पर घी (मक्खन) पिघलता है, वैसे ही चैतन्य भी प्रति क्षण घड़े आदि के रूप में उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है। अन्य (यथा शून्यवादी) कहते हैं, ''जब चैतन्य का निरोध हो जाता है, तो सभी चीजें शून्य प्रतीत होती हैं। फिर भी अन्य (जैसे न्यायवादी) कहते हैं, ''घट आदि विषयक चैतन्य उसका बोध कराने मात्र के लिये है, वह चैतन्य अनित्य होने के कारण उत्पन्न तथा नष्ट होता रहता है। लोकायतिक (भौतिकवादी) कहते हैं कि चैतन्य भूत (पदार्थ) का ही धर्म (गुण) है। **(क्रमश:)**

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/१२)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १२वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

भक्त की वृत्तियाँ भगवान से जुड़ी हुई

इससे पहले पन्द्रहवें श्लोक में भी भगवान ने कहा था कि जो हर्ष, अमर्ष, भय और द्वेष से भी मुक्त है, वह भक्त मुझे प्रिय है। यहाँ सत्रहवें श्लोक में भगवान कह रहे हैं –

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।।१७।।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संग विवर्जितः ।।१८ ।।

यः न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति (जो न हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है), यः शुभाशुभ परित्यागी (जो शुभ-अशुभ कर्मों का त्यागी है) सः भक्तिमान् मे प्रियः (वह भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है) शत्रौ मित्रे च मानापमानयोः समः (शत्रु मित्र में और मान-अपमान में सम है) तथा शीतोष्ण-सुखदुःखेषु समः च संगविवर्जितः (तथा सरदी, गर्मी, सुख-दुख आदि द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति रहित है)।

जो न हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है, जो शुभ-अशुभ कर्मों का त्यागी है, वह भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है।''

''शत्रु मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सर्दी- गर्मी, सुख-दुख आदि द्वन्द्वों में सम और आसक्तिरहित है।''

मनुष्य को जब कोई इष्ट वस्तु प्राप्त होती है, तब वह हर्षित होता है। अनचाही वस्तु या स्थिति सामने आकर खड़ी हो जाए तो मनुष्य को द्वेष होता है। उस वस्तु को ग्रहण करना नहीं चाहता। उसकी कोई प्रिय वस्तु उससे दूर हो जाए तो उसे क्षोभ होता है। जो वस्तु उसे मिली नहीं है, पर जिसको वह पाना चाहता है, उसकी यह आकांक्षा करता है। ये चार प्रकार की वृत्तियाँ मनुष्य के मन में होती हैं।

भगवान यहाँ पर कहते हैं, 'जो हर्षित नहीं होता, द्वेष नहीं करता, क्षोभ नहीं करता, जो आकांक्षा नहीं करता और शुभ तथा अशुभ का त्याग करता है, ऐसा भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है।

विश्लेषण करके इसको समझने का प्रयास करें, तो भगवान का तात्पर्य यह है और भक्ति के क्षेत्र में यही बात प्रमुख भी है कि भक्त केवल भगवान को ही चाहे, उसी तरह जैसे शिशु केवल माँ को ही चाहता है। खिलौना भी बच्चे को तभी तक अच्छा लगता आता है, जब तक माँ उसके समीप रहे। इसी प्रकार हर्षित करनेवाली वस्तुएँ भक्त को तभी तक अच्छी लगती हैं, जब तक भगवान उसके समक्ष रहते हैं। भगवान को देखकर ही वह हर्षित होता है। उनके न मिलने पर शोक होता है । उसकी आकांक्षा केवल भगवान को पाने की ही रहती है। आँख से चाहे वह भगवान को देख न पाए, पर उसे यह तसल्ली रहती है कि वे उसके अन्दर भी हैं और बाहर भी हैं और जैसे ही वह पुकारेगा, भगवान उसके पास आ जाएँगे।

रामकृष्ण परमहंस जैसे हर पल माँ की अपने पास उपस्थिति अनुभव करते थे और जैसे ही किसी कारण से उनका यह बोध बाधित हुआ, उनकी रुलाई फूट पड़ती थी। मन से भगवान का वियोग होने पर भक्त को शोक होना स्वाभाविक ही है। भक्त जानता है कि भगवान उसके पास ही हैं। उन्हें कहीं बाहर ढूँढ़ने नहीं जाना है और न ऐसा ही है कि वे कहीं बाहर से आकर उसे मिल जाएँगे और वह हर्षित हो जाएगा।

ईश्वर हमको सर्वदा प्राप्त हैं, पर इस बात का हमको बोध नहीं है। इसीलिए हम उसे खोजने में लगे रहते हैं। इसीलिए भिन्न-भिन्न प्रकार की अवस्थाओं में से होकर हमें गुजरना पड़ता है। हर्ष, शोक, द्वेष, आकांक्षा का न होना, किन्हीं भावनाओं के सर्वथा अभाव की निशानी नहीं, ये भक्त के हृदय की विशेष अवस्था है। ये सब वृत्तियाँ उसके हृदय में उठती तो हैं, पर केवल भगवान के ही लिए।

भक्त सदैव भगवान के वश में

भगवान ने जो यह कहा **शुभाशुभपत्यिागी** सो अशुभ का परित्याग करना तो समझ में आया, पर शुभ को भी छोड़ देने का क्या तात्पर्य है? यही तात्पर्य है कि भक्त की दृष्टि केवल भगवान की ओर ही होती है। शुभ का मोह भी उसे नहीं बाँधता। साधारण मनुष्य के जीवन में कई बार ऐसे प्रसंग आते हैं कि वह शुभ के प्रति इतना अधिक आकर्षित हो जाता है कि भगवान को भूल ही जाता है। हमारे भीतर शुभ की इतनी तीव्र कामना होती है कि उसके प्रपञ्च में पड़कर हम ईश्वर को ही विस्मृत कर देते हैं। शुभ की संगति जीवन में इतनी ही है कि वह हमें ईश्वर को प्राप्त करा दे, पर स्वयं शुभ ही जब इतना बड़ा हो जाए कि भगवान को पाने की राह की बाधा बन जाए, तो वह शुभ किस काम का है?

भक्त के शुभाशुभ परित्यागी होने का अर्थ यह न लगा लें कि उसके भीतर अशुचिता भी रहेगी, अशुभ भी रहेगा। इन सबकी वह परवाह ही नहीं करता। परवाह तो उसे बस भगवान की रहती है और उन्हीं की ओर उसकी दृष्टि लगी रहती है। क्या शुभ है और क्या अशुभ है, इस ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि जो कोई माँ को ठीक-ठीक पुकारता है, उसे माँ बेताल नहीं होने देतीं।

जो **भक्तिमान** है, जिसके हृदय में भक्ति है अर्थात् अपने-आपको जो भगवान के वश में कर देता है, तो स्वयं भगवान उसके वश में हो जाते हैं। यह भगवान को वश में करने का तरीका है। महाभारत में एक प्रसंग आता है कि सत्यभामा ने पांचाली से पूछा कि क्या कोई टोना-टोटका करके उसने अपने पाँचों पतियों को वश में कर रखा है? तो उत्तर में द्रौपदी ने कहा कि पति को भनक भी पड़ जाए कि उसकी पत्नी उसको वश में करने के लिए ऐसी कोई चेष्टा कर रही है, तो वह कभी वश में नहीं आता। पत्नी जब अपने-आपको पति की वशवर्तिनी कर देती है, तो पति स्वत: ही उसके वश में आ जाता है।

भगवान की ही इच्छा को लाकर अपने जीवन में प्रस्थापित करा देने का अर्थ होता है कि हम भगवान के वश में हो गए, तब भगवान भी हमारे वश हो जाते हैं। अपने-आपको भगवान के वश में कराकर इस तरह जिसने भगवान को अपने वश में कर लिया है, वैसा भक्तिमान भक्त भगवान को बहुत प्रिय है। इसीलिए अर्जुन से भगवान ने कहा कि तुम तो मेरे लिए निमित्तमात्र बनकर जैसा मैं कहूँ, वैसा करो।

साधक का धर्म है जब-जब उसके मन में अहं का भाव आए, तब-तब उस पर ईश्वर समर्पित भाव को प्रत्यारोपण करता चले कि जो हो रहा है, वह ईश्वर ही कर रहा है। उसके किए जाने में कुशलता ईश्वर की ही है। सफलता मिली है, तो ईश्वर के ही कारण। इस प्रकार अपने आप ही शुभ-अशुभ का परित्याग होता चलेगा। बच्चे के शरीर पर चाहे जैसी भी गन्दगी लगी हो, माँ को पाने की विकलता में वह उसी भाँति माँ की गोद में चढ़ जाता है। माँ को पा लेता है। तब यह नहीं कहा जाता कि उसने अशुभ का परित्याग करके और प्रक्षालन द्वारा स्वयं को स्वच्छ-शुभ बनाने के बाद माँ की गोद क्यों नहीं चाही? यही बात भक्त और भगवान की भी है। हम समझें कि भगवान को प्राप्त करने से पहले नवधा भक्ति करना अनिवार्य है, तो यह हमारा अज्ञान है।

श्रीरामकृष्ण की जब तक भक्ति की प्रारम्भिक अवस्था थी, तब तक वे वैधी पूजा करते थे। विधि-विधान के क्रम से पूजा किया करते थे। उनकी भक्ति जब कुछ बढ़ी, तो पूजा का उनका क्रम गड़बड़ा गया। माँ के लिए इतनी व्याकुलता हुई कि क्रम की ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं रहा! लोग कितनी ही निन्दा करते रहे, पर माँ ने उन्हें अपनाया ही।

भगवान कहते हैं कि उनका यह प्रिय भक्त शत्रु और मित्र के प्रति तथा मान और अपमान के प्रति समभाव रखता है। ठण्ड और गर्मी, सुख और दुख, इनमें से किसी के भी प्रति उसकी आसक्ति नहीं रहती। इसका तात्पर्य यह है कि इनमें से जो भी उसके सामने आ जाए, उससे वह प्रसन्न ही रहता है। न तो किसी के लिए उसके मन में द्वेष रहता है और न तो किसी के लिए आग्रह ही रहता है। उसके जीवन में तो भगवान की ही प्रतीक्षा रहती है और उसकी सारी माया, ममता, प्रसन्नता उन्हीं को लेकर रहती है। उसका चित्त भगवान से कभी हटता नहीं। जीवन में जब जो आ जाता है, उसे भगवान का ही प्रसाद, उन्हीं का मंगल विधान मानता है।

भक्त की श्रद्धा अडिग

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।।१९।।

तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी (निन्दा-स्तुति में समान, मौन) येन केनचित् सन्तुष्टः (सब तरह से सन्तुष्ट) अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् (निरासक्त, स्थिरबुद्धि, भक्तिमान) नरः मे प्रियः (पुरुष मुझको प्रिय है) ।

''निंदा-स्तुति में समान, मौन, सब तरह से सन्तुष्ट, निरासक्त, स्थिरबुद्धि, भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है।''

निन्दा और स्तुति दोनों ही उसके लिए एक समान हैं। इन्हीं में उलझा रहे, तो फिर वह भगवान में कब चित्त लगाए? क्यों व्यर्थ निन्दा से अपने मन को खिन्न होने दे या स्तुति से मन में अहंकार को ले आए। एक ही क्रिया से मनुष्य प्रसन्न भी हो सकता है और नाराज भी। अब प्रणाम ही को लो। कोई यदि प्रणाम करे, तो कहा जाए कि सबके सामने नम्रता का ढोंग करता है और न करो तो मान लिया जाए कि अहंकारी है। इसीलिए भगवान कहते हैं कि निन्दा और स्तुति की ओर तुम्हारा ध्यान लगा रहेगा, तो तुम्हारा चित्त विक्षिप्त हो जाएगा। अपनी निन्दा सुनने के लिए और दूसरे की स्तुति सुनने के लिए यदि समान रूप से आग्रही हो जाएँ, तब कहा जाएगा कि हम **'तुल्यनिन्दास्तुति'** हो गए।

मौन हो जाने का अर्थ यह नहीं कि मुँह से तो बोलना बन्द कर दिया और लिख-लिखकर या इशारों में अपने मन के सभी भावों को प्रगट करते रहे। वास्तविक मौन वह है, जो ईश्वर-चिन्तन की प्रगाढ़ता के कारण अपने ही आप सध जाता है। भगवान के प्रति एकाकी प्रेम के आधिक्य से चुपचाप हो जाना, बिल्कुल कुछ नहीं कहना, यह है मौन। ईश्वर के प्रेम में जो तल्लीन है, वह मौनी है और ईश्वर ही को लेकर वह सन्तुष्ट रहता है। यथोचित जीवन-निर्वाह भर के लिए जो कुछ भी मिल जाए, उसी में वह सन्तुष्ट रहता है। **अनिकेत** रहता है। इसका अर्थ यह नहीं कि जितने भी भक्त हैं, वे अपने-अपने घर छोड़कर पेड़ के नीचे जा बैठें। अनिकेत का अर्थ है कि ईश्वर अपनी इच्छा से जिस स्थान-विशेष में रख दें, वहाँ ईश्वर की कृपा को अनुभव करते हुए रहे, उस स्थान-विशेष को अपने मन में घर न बनाने दे, उसके मोह में न फँसे। किसी घर में न रहते हुए भी तो किसी-किसी का मन कहीं-कहीं बसेरा जमा ही लेता है। भक्त का मन वैसा नहीं करता। घर में रहते हुए भी उसका मन घर में नहीं, भगवान के चरणों में बसेरा जमाता है।

स्थिरमति भक्त तब कहलाता है, जब किसी के कुछ भी कह देने से, किसी भी घटना से उसकी मति डोलती नहीं है। कभी कोई आकर यह कह दे कि इतना पुकारने पर भी जब आते नहीं, तो भगवान बहरे ही होंगे या शायद उनका कोई अस्तित्व ही न हो, तो जो अस्थिरमति है, उसका चित्त चंचल हो जाएगा। भगवान का नाम ही लेना वह छोड़ देगा। भगवान कहते हैं, जिसका चित्त कभी विक्षिप्त नहीं होता, जिसकी भक्ति अस्थिर नहीं होती, जिसकी श्रद्धा कभी डिगती नहीं, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३६१ का शेष भाग

हमारी सबसे बड़ी समस्या हमारे जीभ के कारण है। पहले छोटी बातों में संयम करना चाहिए। भोजन का संयम रखने से दूसरी इन्द्रियाँ भी हमें धीरे-धीरे साथ देने लगती हैं। अधिक बोलने से शरीर और मन की शक्ति क्षीण होने लगती है। अकारण बोलने की इच्छा छोड़नी चाहिए। चुपचाप बैठकर भगवान का नाम जपने से शक्ति मिलती है। चुप रहने का सरल उपाय है, भगवान का नाम जप करना। जप करने से इधर-उधर के विचार बंद हो जायेंगे। जप करने के अभ्यास से वाणी की शक्ति नष्ट नहीं होती। यह है जीवन की उन्नति का साधन। जीवन में सुखी रहने का दूसरा उपाय है, एकान्त में भगवान का चिन्तन करें। ○○○

सोशल मीडिया की प्रवृत्ति से युवाओं को बचाना आवश्यक है

डॉ. हिमांशु द्विवेदी

सम्पादक, 'हरिभूमि' समाचार पत्र, रायपुर

सोशल मीडिया की प्रवृत्ति आज बड़ी मानसिक समस्या बन कर उभर रही है। इस प्रवृत्ति से उबारने के लिए विशेषज्ञों की नई खोज करोड़ों लोगों की मदद कर सकती है। अमेरिका को कोलोराडो बोल्डर यूनिवर्सिटी के विशेषज्ञ शोधकर्ताओं ने सोशल मीडिया के अभ्यस्त युवाओं को इस लत से मुक्ति दिलाने के रास्ते खोजे हैं। इस यूनिवर्सिटी के अनुसंधानकर्ताओं की जोड़ी एनी मार्गरिट और निकोलस हंकिन्स ने पाया कि सोशल मीडिया पर बेचैनी नई प्रौद्योगिकियों के बारे में नैतिक घबराहट का अगला दौर है। सोशल मीडिया की प्रवृत्ति एक प्रगतिशील प्रवृत्ति है, यह एक मानसिक समस्या भी है। इस लत के चलते दृष्टि धुँधली हो सकती है, नींद की कमी हो सकती है, सिरदर्द, मानसिक तनाव, डिप्रेशन, एकाकीपन, नकारात्मकता, खाने की आदतों में विकार आदि की समस्या हो सकती है। मोबाइल या कम्प्यूटर की स्क्रीन से निकलनेवाली नीली किरणें हमारे शरीर की बॉडी क्लॉक को कंट्रोल करनेवाले हारमोन मेलाटोनिन का रिसाव रोकती हैं। मेलाटोनिन हमें नींद आने का आभास कराता है, किन्तु इसका रिसाव रूक जाने के कारण से हम देर तक जागते रहते हैं। सोशल मीडिया की लत के चलते मोटापा, कार्पल टनल सिंडोम, हड्डी की कमजोरी, उँगली का टेढ़ापन, दृष्टि-दोष आदि शारीरिक समस्याएँ भी हो रही हैं। शोध के अनुसार जो लोग दिन में ३ से ५ घंटे से अधिक समय सोशल मीडिया पर बिताते हैं, तो यह लत है। विश्व में करीब पाँच अरब लोग और भारत में करीब ६० से ७० करोड़ लोग किसी न किसी रूप में सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। इस लत से प्रभावित होनेवाला सबसे बड़ा आयु-वर्ग किशोर, युवा और वयस्क हैं। बहुत से युवा फोमो (एफओएमओ यानी छूट जाने का डर) का अनुभव करते हैं। सोशल मीडिया की लत धूम्रपान, मद्यपान, ड्रग्स आदि की लत की तरह खतरनाक है। सोशल मीडिया की लत कम आत्मसम्मान, व्यक्तिगत असन्तोष, अतिसक्रियता, स्नेह की कमी, प्यार-अपनेपन का अभाव, आईडेंटिटी क्राइसिस आदि के कारण लग सकती है। वर्चुअल दुनिया ने अपने यूजरों के मस्तिष्क पर कब्जा कर रखा है। सोशल मीडिया उपयोग करनेवालों में से ७५ प्रतिशत से अधिक किशोर हर घंटे अपने फोन को देखते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि सोशल मीडिया सूचना सम्प्रेषण का सबसे तेज माध्यम है, नॉलेज का प्लेटफॉर्म है, सोशल कनेक्टिविटी बढ़ाने, दोस्ती बढ़ाने व अपने दृष्टिकोण को साझा करने जैसे इसके लाभ भी हैं, लेकिन इसकी लत लगने का खतरा भी उतना ही अधिक है। मेटावर्स वर्चुअल तकनीक के आने के बाद लत लगने का खतरा अधिक होगा। आजकल 'डूमस्क्रॉल' (ऑनलाइन नकारात्मक समाचार पढ़ने में अत्याधिक समय व्यतीत करने की क्रिया) नई चिन्ता बन कर उभरा है। स्क्रॉलिंग की आदत पहले से ही आम है। सक्रिय व निष्क्रिय प्रयोग के बीच अन्तर समझने की आवश्यकता है। शोधकर्ताओं के अनुसार अगर चार सप्ताह तक सोशल मीडिया का केवल सक्रिय उपयोग करें, मीडिया फीड को नियंत्रित करें, अपने फोन को 'ग्रेस्केल' पर सेट करें और अपने लिए फोन मुक्त समय तय करें, तो सोशल मीडिया की लत से छुटकारा पा सकते हैं। सोशल मीडिया की लत से बचाव के लिए जन-जागरुकता अभियान के साथ हमें लोगों को शिक्षित भी करना होगा और सरकार की ओर से हर २४ घंटे में 'नो इंटरनेट टाइम' भी सेट करना होगा। वह समय रात के ११ बजे से सुबह के ५ बजे तक हो सकता है। लोग स्वैच्छिक रूप से भी इस समय-चक्र का उपयोग कर सकते हैं। ○○○ (हरिभूमि से साभार)

श्रीराम और श्रीरामकृष्ण

स्वामी निखिलात्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज, प्रयागराज, नारायणपुर, जयपुर के सचिव थे। उन्होंने यह व्याख्यान श्रीरामकृष्ण आश्रम, अमरकंटक में दिया था, जिसे विवेक-ज्योति पत्रिका के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

(गतांक से आगे)

जब भगवान शंकर लौटकर बाद में कैलाश जाते हैं, तब पार्वतीजी ने पूछा – प्रभु ! रावण ने क्या वरदान माँगा? भगवान शंकर हँसते हुए कहते हैं – उसने अपने मरने का वरदान माँगा। पार्वतीजी कहती हैं – प्रभु ! भला कोई अपने मरने का वरदान माँग सकता है? भगवान शंकर ने कहा – अरे, वह इतना शक्तिशाली था कि वह कैसे मरेगा इसके लिए सोचना पड़ता, पर उसने ही वरदान माँग लिया कि अगर मैं मरूँ तो या तो बन्दर के हाथ मरूँ या मनुष्य के हाथ मरूँ। अपने आप को इतना बुद्धिमान समझनेवाला रावण ने अपनी मृत्यु का रास्ता स्वयं चुन लिया। रावण को वरदान देने के बाद भगवान शंकर और ब्रह्माजी कुम्भकर्ण के पास पहुँचते हैं। जब ब्रह्माजी ने कुंभकर्ण का रूप देखा, तो वे घबड़ा गये। पहाड़ जैसा विशाल शरीर और कितना खाता था ! ब्रह्माजी को लगा कि यह एक दिन में इतना खाता है, अगर इतना खाता रहा, तो संसार में बचेगा क्या? ब्रह्माजी जान गये कि वह माँगना क्या चाहता है ! वह माँगना चाहता था कि मैं ६ महीने जागूँ, एक दिन सोउँ ! ब्रह्माजी ने देखा कि यह एक दिन में इतना खाता है, अगर यह छह महीने तक जागता रहा, तो संसार में बचेगा क्या?

जौं दिन प्रति अहार कर सोई।
बिस्व बेगि सब चौपट होई। १/१७९/५

यह रोज इतना खाने लगा, तो संसार के चौपट होने में देर नहीं। ब्रह्माजी जान गये कि वह चाहता है कि मैं छह महीने जागूँ और एक दिन सोऊँ।

सचमुच कुंभकर्ण के बारे में हम रामायण में पढ़ते हैं, इतना पहाड़ जैसा विशाल शरीर, इतना खानेवाला ! कभी-कभी मन में आता है कि जब कवि ने कुंभकर्ण की कल्पना की, तो क्या कुछ नशा करके तो नहीं किया। अरे, कोई इतना बड़ा पहाड़ जैसा शरीरवाला हो सकता है? पर हमारे अन्दर का जो अहंकार है, वह कितना विशाल है? मनुष्य की ऊँचाई कितनी होगी, अधिक से अधिक सात फुट या साढ़े सात फुट हो जाये तब तो वर्ल्ड रिकार्ड हो जायेगा, पर हमारे अहंकार की ऊँचाई देखिए ! हमारा अहंकार इतना ऊँचा है कि उसे आप किसी स्केल से नहीं माप सकते। मनुष्य को खाने के लिए कितना चाहिए? थोड़े अन्न से हमारा पेट भर जाता है, पर मनुष्य के अहंकार को खाने के लिए कितना चाहिये? मनुष्य को जितना सम्मान दीजिए, आदर दीजिए, कभी उसका अहंकार सन्तुष्ट नहीं होता। तब लगता है कि हाँ, कवि ने कुंभकर्ण के अहंकार के रूप में बहुत सही कल्पना की है। हमारे अन्दर का अहंकार बहुत विशाल है। ब्रह्माजी जान गये, यह माँगना क्या चाहता है? वह माँगना चाहता था कि मैं छह महीने जागूँ और एक दिन सोऊँ। तुरन्त ब्रह्माजी सरस्वतीजी से प्रार्थना करते हैं, देवी ! इसका दिमाग पलट दो। यह जो माँगना चाहता है, ठीक उलटा माँगे। जब भगवान शंकर ने कहा – बोलो वत्स ! क्या चाहिए? तब तक सरस्वतीजी ने अपना कार्य कर दिया था –

सारद प्रेरि तासु मति फेरी।
मागेसि नीद मास षट केरी।। १/१७६/७

सरस्वतीजी ने उसका दिमाग पलट दिया। जब भगवान शंकर ने वर माँगने को कहा, तब उसने कहा – महाराज ! मैं छह महीने सोऊँ और एक दिन जागूँ। माँगना चाह रहा था, छह महीने जागूँ, एक दिन सोऊँ, किन्तु जैसे ही उसने कहा – छह महीने सोऊँ और एक दिन जागूँ, तुरन्त ब्रह्माजी ने कहा – तथास्तु। चलिए महाराज ! पता नहीं और क्या माँग बैठे। भगवान शंकर ने कहा – ठीक है बेटा, तथास्तु ! तथास्तु ! तुम छह महीने सोना और एक दिन जागना। पर याद रखना कि अगर बीच में जागोगे, तो मारे जाओगे। ये कुम्भकर्ण मरता कब है, जब रावण उसे बीच में जगाता है। जब भगवान राम ने वानरों की सेना लेकर आक्रमण किया, तब कुम्भकर्ण सोया हुआ था। जब भगवान राम की सेना ने

आधी राक्षस सेना का नाश कर दिया, तब रावण डर के मारे कुंभकर्ण को जगाता है। कुंभकर्ण जाग करके बोलता है – अरे, तुमने मुझे जगाया क्यों? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि अगर बीच में जगाया जाऊँगा, तो मेरी मृत्यु होगी। रावण कहता है – क्या करें भाई ! अरे राम की सेना ने हमारे आधे राक्षसों को मार डाला। इसीलिए तुम्हें जगाना पड़ रहा है। सचमुच में हमारे अन्दर का कुंभकर्ण कब जागता है? हमारे अन्दर में जो राम की सेना है, जब हमारे अन्दर की राम की सेना, हमारे अन्दर के रावण की सेना का आधा नाश करती है, तब हमारे अन्दर का भी कुंभकर्ण जागता है। हमारे अन्दर राम की सेना कौन है? हमारे अन्दर के जितने सद्‌गुण हैं, वही राम की सेना है ! हमारे अन्दर सेवा, दान की वृत्ति है, तपस्या की वृत्ति है, ज्ञान की वृत्ति है। जब हम दान के द्वारा लोभ को जीतते हैं, तुरन्त कुंभकर्ण जागता है – मैं बड़ा दानी हूँ। जब मैं अपने अन्दर की तपस्या की वृत्ति से काम को जीतता हूँ, तुरन्त कुंभकर्ण जागता है – मैं बड़ा तपस्वी हूँ। जब मैं अपने अन्दर के अज्ञान को ज्ञान से जीतता हूँ, तुरन्त कुंभकर्ण जागता है, मैं बड़ा ज्ञानी हूँ। मैं बड़ा दानी, मैं बड़ा तपस्वी, यह बड़ी विडम्बना है। जब हम अपने सद्‌गुणों से दुर्गुणों का नाश करते हैं, यह कुंभकर्ण जागता है। कुंभकर्ण ने पूछा – अच्छा तूने मुझे जगाया क्यों ? रावण सारी कथा सुनाता है। कैसे वह सीताजी को चुराकर लाया और कैसे श्रीराम ने वानरों की सेना लेकर के आक्रमण किया। जब कुंभकर्ण यह सुनता है – फटकारने लगा रावण को। कहता है –

जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान। ६/६२/०

अरे दुष्ट ! तू जगदम्बा को चुरा करके लाया, अब तू अपना कल्याण चाहता है? रावण को तो घबड़ा जाना चाहिए था। अरे इसको राम के विरुद्ध भड़काने के लिए आया, ये तो सीताजी को जगदम्बा बोल रहा है। रावण घबड़ाता नहीं है। वह कुंभकर्ण के स्वभाव को जानता है और इधर कुंभकर्ण क्या करने लगा? गोस्वामीजी लिखते हैं – 'रामरूप गुण सुमिरत' – भगवान राम के गुणों का स्मरण कर ध्यान करने लगा। रावण घबड़ाता नहीं, वह जानता है कि भले ही यह राम का चिन्तन करे, सीताजी को जगदम्बा बोले, पर काम मेरा ही करेगा। हमारे अन्दर भी जब यह कुंभकर्ण, अहंकार जागता है, हम नाम राम का लेते हैं, पर काम रावण का करते हैं। यही हमारे अन्दर की मनोवृत्ति है। कुम्भकर्ण भगवान राम का ध्यान करने लगा। गोस्वामीजी लिखते हैं –

राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक।।
६/६३/०

इधर वह राम के रूप का चिन्तन कर रहा है। कितनी देर तक? 'मगन भयउ छन एक'। क्षण मात्र के लिए श्रीराम का स्मरण करता है। यह रावण जानता था, उसने पहले से हजारों, लाखों घड़ों में शराब और भैंसे का मांस मँगवा लिया था। क्षणमात्र भगवान श्रीराम का चिन्तन करने के बाद जैसे ही कुंभकर्ण आँख खोलता है, सामने में देखा – घड़ों में शराब, भैंसे का मांस भरा हुआ है। श्रीराम को भूल गया। कुम्भकर्ण शराब पीने लगा, मांस खाने लगा, गरजने लगा।

हमारे अन्दर का कुंभकर्ण जब जागता है, हम भी राम का चिन्तन करते हैं। कुंभकर्ण का तात्पर्य क्या है? जिसके कान कुंभ के समान, घड़े के समान हों। जब हमारे अन्दर अहंकार जागता है, हमारे कान भी घड़े के समान ही हो जाते हैं। हम सब हमेशा चाहते हैं कि लोग हमारी प्रशंसा करते रहें, हमारा गुणानुवाद करते रहें। उस घड़े में दूध डालिए, तो दूध भी चला जायेगा, शराब डालिये तो शराब भी चली जायेगी। अहंकारी व्यक्ति कभी-कभी भगवान का चिन्तन भी करता है, जैसा कुंभकर्ण करता है, पर रावण का कार्य करता है। यह कुंभकर्ण शराब पीने लगा, मांस खाने लगा, गरजने लगा। रावण ने कहा – क्यों भैया ! युद्ध करोगे? कुंभकर्ण ने कहा – अवश्य युद्ध करेंगे। किसकी ओर से लड़ोगे? कुंभकर्ण ने कहा। तुम हमारे भाई हो, हम तुम्हारी ओर से लड़ेंगे? रावण ने कहा – अभी तो राम की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। सीता को जगदम्बा कह रहे थे? कुंभकर्ण ने कहा – नहीं, तुम हमारे भाई हो, तुम्हारी ओर से लड़ेंगे। राम की ओर से क्यों लड़ेंगे?

रावण ने कहा – अच्छी बात है, मेरी ओर से लड़ोगे, तो लो मेरी सेना तुम्हारी सहायता के लिए तैयार है। कुंभकर्ण ने कहा – मुझे किसी सेना की आवश्यकता नहीं। मैं अकेले ही राम की सेना को समाप्त करने में समर्थ हूँ।

सचमुच यदि एक बार भी यह कुंभकर्ण हमारे अन्दर जाग गया, तो हमारे अन्दर जो भी राम की सेना है, उसे नष्ट कर देता है। हमारे अन्दर जितने सद्‌गुण हैं, एक अहंकार समस्त सद्‌गुणों का नाश कर देता है। कुंभकर्ण कहता है – मैं अकेले राम की सेना को समाप्त कर दूँगा। अकेले चला कुंभकर्ण –

कुंभकरन दुर्मद रनरंगा।
चला दुर्ग तजि सेन न संगा।। ६/६३/२

अकेले ही पहाड़ के समान कुंभकर्ण चला जा रहा है। उसके साथ न कोई सेना है, न कोई साथी। भगवान राम ने कुंभकर्ण को दूर से आते देखा। विभीषण से पूछते हैं – यह तो तुम्हारा ही कोई सम्बन्धी लगता है। भगवान राम को तो कभी अहंकार से पाला पड़ा नहीं। इसलिए जीवरूपी विभीषण से कहते हैं – तुम्हीं इसका परिचय दो। ये कौन आ रहा है? विभीषण कहता है –

नाथ भूधराकार सरीरा।
कुंभकरन आवत रनधीरा।। ६/६४/२

विभीषण कहता है – प्रभु ! जो पहाड़ के समान शरीर वाला आ रहा है, वह हमारा भाई, रावण का भाई कुंभकर्ण है। सारे वानर अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर कुंभकर्ण पर टूट पड़ते हैं । वानरों का अस्त्र-शस्त्र क्या है? कोई चट्टान उठा लेता है, कोई वृक्ष उखाड़कर फेंकता है, पर कुंभकर्ण को ऐसा लगता है –

जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो। ६/६४/६

– जैसे कोई हाथी के ऊपर आक का फल फेंके, हाथी पर कोई असर होता नहीं। वैसे ही कुंभकर्ण पर चट्टानें, पहाड़ पड़ते हैं, वृक्ष पड़ते हैं, पर कोई असर नहीं होता है। उलटे कुंभकर्ण क्या करता है?

कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई।
जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई।। ६/६६/२

वह करोड़ों बन्दरों को उठा कर खाने लगा। जैसे लाखों करोड़ों टिड्डियाँ गुफा के अन्दर समा जाती हैं, वैसे ये सारे वानर कुंभकर्ण के अन्दर चले जा रहे हैं ! वे वानर कौन हैं? गोस्वामीजी लिखते हैं –

कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट।

ये जितने वानर हैं, ये मोक्ष के साधन हैं। हमारे अन्दर जितने सद्‌गुण हैं, वे मोक्ष के साधन हैं। हमारे अन्दर दान की वृत्ति है, तपस्या की वृत्ति है, करुणा की वृत्ति है, ये जितने सद्‌गुण हैं, हमारे इन सद्‌गुणों को कुंभकर्ण रूपी अहंकार नाश कर देता है। यह अहंकार कभी जाने का नहीं। सचमुच राम की सेना के जितने बड़े-बड़े योद्धा थे, सब कुंभकर्ण से लड़ते और हारते हैं। केवल एक व्यक्ति जो राम की सेना में था, उससे लड़ता नहीं। वे थे लक्ष्मणजी ! लक्ष्मणजी क्या कुंभकर्ण से डर गये थे? लक्ष्मणजी डरे नहीं। लक्ष्मणजी हैं जीवों के आचार्य ! शेष के अवतार ! लक्ष्मणजी के कहने का तात्पर्य था कि प्रभु ! इस अहंकार को जीतना जीव के वश की बात नहीं है। इस अहंकार का नाश जीव नहीं कर सकता। इस अहंकार का कोई नाश कर सकता है, तो वह आप ही कर सकते हैं। सचमुच में यह अहंकार भगवान की कृपा के बिना नष्ट नहीं हो सकता।

श्रीरामकृष्ण देव भी कहा करते थे – यह अहंकार कभी जाने का नहीं। यह अहंकार मानो बरगद के पेड़ के समान है। आज बरगद के पेड़ को काटो, कल उसमें से फुनगी निकल पड़ेगी, एक शाखा निकल पड़ेगी। इसलिए श्रीरामकृष्णदेव कहते थे – यह अहंकार कभी जाने का नहीं, इसीलिए इस अहंकार को पक्का कर दो। मैं प्रभु का दास हूँ, मैं प्रभु की सन्तान हूँ, यह पक्का अहंकार है। इस अहंकार में कोई हानि नहीं है। पर मैं इतना बड़ा ज्ञानी, इतना बड़ा दानी हूँ, यह कच्चा अहंकार है, यह मनुष्य का नाश करता है। इसीलिए लक्ष्मणजी कहते हैं – प्रभु ! इसका नाश जीव नहीं कर सकता। आप ही कर सकते हैं। जितने बड़े-बड़े योद्धा हैं श्रीराम की सेना में, सबको मूर्छित कर देता है कुंभकर्ण।

अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव।।
६/६५/०

अंगद, हनुमान, जामवन्त सबको मूर्छित कर देता है और कुंभकर्ण सुग्रीव को मूर्छित करके क्या करता है? 'काँख दाबि कपिराज'। मूर्छित सुग्रीव को अपनी बगल में दबाकर चलने लगा। उसका तात्पर्य था – तुम्हारे भाई बालि ने हमारे भाई रावण को बगल में दबाया था ! चलो, उसका बदला लेते हैं। मूर्छित सुग्रीव को लेकर जा रहा है, अचानक मूर्छा टूटती है सुग्रीव की। देखता है सुग्रीव – अरे मैं कहाँ पड़ा हुआ हूँ। देखता है – कुंभकर्ण के बगल में दबा हुआ हूँ। वैसे ही जब हमारे अन्दर विवेक जागता है, तो हमें भी लगता है – अरे, देखो, हम कैसे अहंकार के वशीभूत हो गये? कैसे इससे मुक्त हों? हमें वही करना चाहिए, जो सुग्रीव ने किया।

सुग्रीव देखता है कि मैं तो कुंभकर्ण की बगल में दबा हुआ हूँ। मैं तो इसको हरा नहीं सकता। कैसे मुक्त होऊँ? सुग्रीव ने अपने आपको मुर्दे जैसा बना लिया। यही उपाय है कुंभकर्ण को जीतने का। जब हम अहंकार के वशीभूत हों,

अपने आप को मुर्दे जैसा बना लें। क्यों? क्योंकि मूर्दे पर आप माला पहनाइये, मुर्दे की स्तुति करिए, उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मुर्दे पर पत्थर मारिए, मुर्दे को गाली दीजिए, मुर्दे की प्रशंसा कीजिये, उनकी निंदा कीजिये, उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी स्थिति हम बना लें अपनी, तो सचमुच में इस अहंकार से छूट सकते हैं। कुंभकर्ण ने देखा – अरे ये तो मर गया? अब इसे लेकर मैं जाऊँगा, लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे, देखो मूर्दे को ढोकर के ला रहा है। तुरन्त कुंभकर्ण अपने हाथ उठाता है, जिससे वह नीचे गिर जाये। पर सुग्रीव ! वह मरा थोड़ी था। उसने तो मुर्दे बनने का ढोंग किया था। जैसे कुंभकर्ण हाथ उठाता है, सुग्रीव उसके नीचे से निकलकर भागता है और भागने के पहले दो काम करता है – कुंभकर्ण के नाक और कान काट लेता है। वह जानता है, ऐसे तो मैं इसको हरा नहीं सकता, पर नाक और कान काटने से ये जरूर मेरे पीछे दौड़ेगा। सचमुच में अहंकारी व्यक्ति को दो चीजों का बड़ा ध्यान रहता है। एक तो नाक न कटने पाये और कान ठीक रहे। कान में सब समय प्रशंसा के शब्द जायें और नाक न कटने पाये। जब कुंभकर्ण ने देखा कि जिसको मुर्दा समझ रहा था, ये तो मरा नहीं है। उलटे दुष्ट ने मेरी नाक-कान काट दी। क्रोध में भरकर वह सुग्रीव के पीछे दौड़ता है। सुग्रीव सोचता है – मैं तो इसे हरा नहीं सकता, जैसे-तैसे मैं किसी तरह भगवान राम के सामने तो ले जाऊँ, प्रभु इसका नाश कर देंगे। सुग्रीव दौड़कर श्रीराम के पीछे खड़ा हो जाता है। जैसे ही क्रोध में पागल कुंभकर्ण भगवान राम के सामने आता है, श्रीराम सारी सेना अपने पीछे कर देते हैं –

राम सेन निज पाछें घाली।

चले सकोप महा बलसाली।। ६/६९/६

श्रीराम ने सारी वानर सेना अपने पीछे कर दी, जैसे कुंभकर्ण सामने आता है, एक ही बाण से श्रीराम उसका नाश कर देते हैं। तात्पर्य यह है जब तक हम अपने पुरुषार्थ से इस कुंभकर्ण रूपी अहंकार को जीतने का प्रयास करेंगे, हम परास्त होंगे, पर जहाँ हम अपने पुरुषार्थ को पीछे कर देते हैं, भगवान को सामने कर देते हैं, भगवान हमारे इस कुंभकर्ण का नाश करते हैं, अहंकार का नाश करते हैं। इसीलिए गोस्वामीजी कहते हैं – भाई ! भगवान श्रीराम केवल एक रावण, कुंभकर्ण के नाश के लिए नहीं आये। ये जो दुर्गुणरूपी रावण है, कुंभकर्ण है, राक्षसी सेना है, उसके नाश के लिए भगवान राम का अवतरण होता है ! **(क्रमशः)**

रामकृष्ण मिशन की स्थापना के १२५ वर्ष पूर्ण होने पर डॉक्यूमेंट्री

रामकृष्ण मिशन की स्थापना के १२५ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ एवं एबीपी आनन्द के संयुक्त प्रयासों द्वारा एक डॉक्यूमेंट्री का निर्माण किया गया। सर्वप्रथम यह डॉक्यूमेंट्री बांग्ला भाषा में दिनांक १.५.२०२२ को 'मानवतार प्रस्फुटित शतदल' नामक शीर्षक से प्रस्तुत की गई। तत्पश्चात् इस डॉक्यूमेंट्री का अंग्रेजी भाषा में रूपान्तर 'Blooming lotus of humanity' नाम से बेलूड़ मठ के द्वारा किया गया। अब तक इस डाक्यूमेंट्री का विभिन्न भाषाओं में रूपान्तर किया जा चुका है। विभिन्न भाषाओं में रूपान्तरित हो चुकी, यह डॉक्यूमेंट्री रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के यू-ट्यूब चैनल @belurmathofficail पर उपलब्ध है।

इसी क्रम में इसका हिन्दी भाषा में रूपान्तरण 'मानवता का खिलता कमल' नाम से रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर के द्वारा किया गया है। रूपान्तर के साथ-साथ इस डॉक्यूमेंट्री में हिन्दी भाषी क्षेत्रों में रामकृष्ण मिशन के विभिन्न शाखा-केन्द्रों द्वारा आयोजित की जानेवाली विभिन्न प्रकार की गतिविधियों को दर्शाया गया है। यह सम्पूर्ण डॉक्यूमेंट्री एवं अलग से हिन्दी भाषी क्षेत्रों में रामकृष्ण मिशन की गतिविधियाँ, रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर के यू-ट्यूब चैनल एवं बेलूड़ मठ के यू-ट्यूब चैनल में उपलब्ध है।

सम्पूर्ण डॉक्यूमेंट्री लिंक : https://youtu.be/viXpI0XJMDc

डॉक्यूमेंट्री लिंक : https://youtu.beCNjmdz99Boc

साधुओं के पावन प्रसंग (६७)

स्वामी निखिलानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी निखिलानन्द जी महाराज (१८९५-१९७३) का पूर्वाश्रम का नाम दीनेशचन्द्र दासगुप्त था। उनका जन्म १८९५ ई. में नोआखाली जिला (अब बांगलादेश) में हुआ था। उनके पिताजी श्रीरामकृष्ण के गृहस्थ शिष्य रामचन्द्र दत्त के मन्त्रशिष्य थे। इसीलिए वे बचपन से ही रामकृष्ण-विवेकानन्द के जीवन तथा उपदेश से परिचित थे। वे जगन्नाथ महाविद्यालय, ढाका तथा कोलकाता विश्वविद्यालय के एक उत्कृष्ट छात्र थे। युवावस्था में वे भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के विप्लवी दल में तथा बाद में भारतीय नेशनल कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे। १९२० ई. में नागपुर काँग्रेस से वापस आते समय उन्होंने काशी में स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज का दर्शन किया। तथा इसके अगले वर्ष ही वे राजनीति त्याग करके मायावती अद्वैत आश्रम में सम्मिलित हुए। १९१६ ई. में ही उनकी श्रीमाँ सारदा देवी से मन्त्रदीक्षा हो चुकी थी। तदुपरान्त उनकी बेलूड़ मठ में स्वामी शिवानन्द जी महाराज के पास से ब्रह्मचर्य दीक्षा तथा १९२३ ई. में स्वामी सारदानन्द जी महाराज से संन्यास दीक्षा हुई। स्वामी निखिलानन्द १९३१ ई. में न्यूयार्क में स्वामी बोधानन्द के सहकारी के रूप में आये। तथा उन्होंने १९३३ ई. में न्यूयार्क में रामकृष्ण-विवेकानन्द केन्द्र की स्थापना की और वे शरीरान्त तक वहाँ के अध्यक्ष रहे। स्वामी निखिलानन्द जी महाराज ने २१/०७/१९७३ को ७८ वर्ष की उम्र में थाउजेंड आइलैण्ड पार्क में शरीर-त्याग किया।

इतिहास कभी भी सरल तथा सहज भाव से नहीं चलता। किसी व्यक्ति, संस्था या जाति का उत्थान और पतन, उन्नति और अवनति के बीच से ही आगे चलता है। इतिहास प्रमाण देता है कि कैसे रोमन, मुगल, ब्रिटिश साम्राज्य का उत्थान और पतन हुआ। यह बहुत कुछ व्यक्ति के ऊपर निर्भर करता है। कोई गठन करता है, तो कोई तोड़ता है। यह जोड़-तोड़ लेकर ही तो व्यक्ति, संघ तथा जाति का इतिहास है।

स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज की बायीं ओर
बैठे हुए स्वामी निखिलानन्द जी महाराज

रामकृष्ण संघ के इतिहास में प्रत्येक संन्यासी तथा ब्रह्मचारी ने दधीचि जैसा आत्मत्याग किया है। इस संघ का पोषण और वर्धन किसी एक संन्यासी के द्वारा नहीं हुआ। फिर भी संघ के सभी संन्यासी सामान्य रूप से भार वहन कर रहे हैं, ऐसा भी नहीं है। जिस प्रकार किसी मकान के कोने का स्तम्भ बीच का स्तम्भ से अधिक भार वहन करता है। उसी प्रकार स्वामी निखिलानन्द जी रामकृष्ण संघ के एक कोना के स्तम्भ थे, जिन्होंने पाश्चात्य चिन्तन पर गहरा प्रभाव डाला है। उनके जैसे संन्यासियों का जीवन रामकृष्ण संघ के इतिहास को गौरवान्वित करेगा।

स्वामी निखिलानन्द जी महाराज का प्रथम दर्शन मैंने बेलूड़ मठ में ११.०३.१९५९ को किया था। ठाकुर की जन्मतिथि के दिन मठ-प्रांगण में वे अंग्रेजी में व्याख्यान दे रहे थे। अद्वैत आश्रम वापस आकर मैंने उनके व्याख्यान का सारांश अपनी दैनन्दिनी में लिखा :

''अवतार के मन में जो भी विचार उदित होता है, वह अविलम्ब सत्य हो जाता है। ठाकुर एक दिन घोड़ागाड़ी से

मथुरनाथ विश्वास के साथ कोलकाता से आ रहे थे। जब घोड़ागाड़ी वराहनगर के पास आया, तब ठाकुर को एक दिव्य दर्शन हुआ। उनको अनुभव हुआ कि वे सीता हैं तथा रावण उनका अपहरण कर रहा है। इसी विचार में वे समाधि में चले गये। तभी जटायु पक्षी उसका विरोध करने लगा। उसी समय घोड़ों की लगाम टूट गयी, घोड़े बेचैन हो गये और वे गिर पड़े। मथुर बाबू को कुछ समझ में ही नहीं आया कि ऐसा क्यों हुआ? जब ठाकुर समाधि से नीचे आये, तब मथुर बाबू ने घोड़ों के साथ घटित घटना को उनको बताया। तत्पश्चात् ठाकुर ने बताया कि समाधि में उनको रावण अपहरण करके ले जा रहा है तथा जटायु ने रावण के रथ पर आक्रमण कर दिया और उसको नष्ट कर दिया। इस घटना को सुनकर मथुर बाबू ने ठाकुर से कहा, ''बाबा, ऐसे में तो आपके साथ मार्ग में चलना भी कठिन है !''

१९६३-६४ ई. में स्वामीजी की जन्मशताब्दी के उपलक्ष्य में देश-विदेश से अनेक संन्यासी बेलूड़ मठ आये थे। प्रभवानन्दजी के साथ क्रिस्टोफर इसरवूड भी आये थे। ०८/०१/१९६४ को बेलूड़ मठ में साधु-सम्मेलन हुआ। मेरी दैनन्दिनी में लिखा हुआ है कि स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने अध्यक्षता की थी तथा वक्ता थे स्वामी प्रभवानन्द, निखिलानन्द, रंगनाथानन्द, सम्बुद्धानन्द, पुण्यानन्द, हिरण्मयानन्द, सिद्धात्मानन्द तथा लोकेश्वरानन्द।

मैं नवीनता का पुजारी हूँ। मैं समय-समय पर ठाकुर-श्रीमाँ-स्वामीजी के सम्बन्ध में नवीन घटना, नवीन बातें सुनना तथा बोलना पसन्द करता हूँ। निखिलानन्दजी का विशिष्ट व्यक्तियों से परिचय था। उनको श्रीमाँ की कृपा प्राप्त हुई थी तथा वे ठाकुर की सन्तानों को बहुत प्रिय थे। वे एक बार जहाज से आकर्टिक की जलयात्रा करने गये थे। जहाज के केबिन में उनका नाम देखकर एक सहयात्री ने पुछा, ''आपने स्वामी विवेकानन्द का नाम सुना है?''

विस्मित होकर महाराज ने कहा, ''मैं उनके ही संघ का एक संन्यासी हूँ।'' तदुपरान्त उस सज्जन ने कहा कि वे १८९३ ई. में शिकागो धर्मसभा में उपस्थित थे। स्वामीजी की वाणी ने उनको बहुत प्रेरित किया था एवं उनको अपने धर्ममत में विश्वास ला दिया था। विवेकानन्द केवल हिन्दू धर्म के ही प्रतिनिधि नहीं थे, बल्कि वे वास्तव में सभी धर्मों के प्रतिनिधि थे। उन्होंने महाराज को और भी कई घटनायें बतायी थीं।

स्वामीजी के जन्म-शताब्दी समारोह के समय निखिलानन्दजी के साथ चेस्टर कार्लसन, काउंटेस कोलोरेडो मेन्सफेल्ड एवं रूथ पीटर भी आये थे। कोलकाता पार्क सर्कस मैदान में शतवार्षिकी उत्सव हुआ। उस समय मैं अद्वैत आश्रम में एक ब्रह्मचारी था। एक दिन सन्ध्या समय महाराज अपने मित्रों को लेकर अद्वैत आश्रम में आये। मैंने उनको चाय तथा नाश्ता से स्वागत किया। मैंने महाराज से कहा, ''महाराज, आपने स्वामीजी की जीवनी में लिखा है कि प्रो. राइट स्वामीजी के साथ थाउजेंड आइलैंड पार्क में थे। मुझे लगता है कि डॉ. वाइट थे, प्रो. राइट नहीं। ''उन्होंने अविलम्ब काउंटेस से कहा कि उसको सही करना होगा।

विवेकानन्द जन्मशताब्दी के उपलक्ष्य में कोलकाता विश्वविद्यालय में एक विशेष समारोह हुआ। विश्वविद्यालय के कुलपति ने स्वामी निखिलानन्द जी का विशेष स्वागत किया। इस कार्यक्रम में निखिलानन्दजी ने तथा रंगनाथानन्दजी ने दरभंगा सभामण्डप में व्याख्यान दिया था। मैंने उनका व्याख्यान सुना था तथा अपनी दैनन्दिनी में लिखा था कि निखिलानन्दजी ने ड्यूक ऑफ रिशेल्यू की कहानी बतायी थी। ड्यूक का पूरा नाम 'मैरी ओडेट जीन आर्मंड चैपल डे जुमिलहाक, डुक डी रिशेल्यू' था। उन्होंने फारसी के प्राचीन अभिजात कार्डिनल रिशेल्यू वंश में जन्मग्रहण किया था तथा सम्राट १३वाँ लूई से उनके पूर्वपुरुष ने ड्यूक की उपाधि प्राप्त की थी। ड्यूक ऑफ रिशेल्यू ने जेसूइट विद्यालय में अध्ययन तथा Aix-en-Provence University से उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। **(क्रमशः)**

भाव-प्रचार परिषद का सम्मेलन हुआ

३० अप्रैल और १ मई, २०२४ को रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर में **मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद का अर्धवार्षिक सम्मेलन** आयोजित किया गया। कार्यक्रम प्रात: ९ बजे ध्वजारोहण, अतिथियों के दीप-प्रज्ज्वलन और श्रीठाकुर, श्रीमाँ और श्रीस्वामीजी के पावन चित्रों पर पुष्पार्पण के साथ प्रारम्भ हुआ। संन्यासियों के स्वागतोपरान्त 'विश्वास' के सचिव दिलीप पवार ने स्वागत-भाषण दिया। तत्पश्चात् परिषद के संयोजक स्वामी तन्मयानन्द जी ने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। तदनन्तर परिषद के अध्यक्ष स्वामी व्याप्तानन्द जी महाराज ने सभा को सम्बोधित किया। रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के प्रतिनिधि पर्यवेक्षक स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी महाराज ने भावधारा के उद्देश्यों और कार्यों पर प्रकाश डाला। उसके बाद भावधारा के विभिन्न केन्द्रों से आये प्रतिनिधियों ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और आश्रमों के संचालन में आनेवाली समस्याओं को निराकरण हेतु परिषद के समक्ष रखा। अन्य सत्रों में परिषद के उपाध्यक्ष स्वामी अव्ययात्मानन्द जी, स्वामी नित्यज्ञानानन्द जी और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने परिषद के समक्ष प्रस्तुत समस्यायों के निराकरण हेतु अपने विचार प्रदान किये। स्वामी सेवाव्रतानन्द जी, स्वामी योगस्थानन्द जी महाराज ने सभा को सम्बोधित किया। १ मई को भक्त सम्मेलन था, जिसमें उपरोक्त सभी संन्यासियों ने सभा को सम्बोधित किया। सन्ध्या ७.३० बजे से ९.३० बजे तक रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के छात्र-छात्राओं द्वारा अत्यन्त सुन्दर सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया।

नारायणपुर में वार्षिकोत्सव सम्पन्न हुआ

१ मई, २०२४ को **रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर** में वार्षिकोत्सव सोल्लास मनाया गया। उस दिन प्रात: मंदिर में श्रीरामकृष्ण देव की विशेष-पूजा-हवन आदि किये गये। शाम ५ बजे आश्रम के विवेकानन्द ऑडिटोरियम में पुरस्कार वितरण और धर्मसभा आयोजत की गई। विभिन्न विषयों और क्षेत्रों में उत्कर्ष प्राप्त छात्र-छात्राओं को सम्माननीय अतिथियों के द्वारा पुरस्कार प्रदान किया गया। धर्मसभा को स्वामी अव्ययात्मानन्द, स्वामी व्याप्तानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द, स्वामी नित्यज्ञानानन्द, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा आदि ने सम्बोधित किया। उसके बाद नारायणपुर और अन्य पाँच केन्द्रों से आये छात्रों द्वारा विविध प्रकार के प्रेरक और आनन्ददायक अत्यन्त सुन्दर नृत्य, गीत, नाटक आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। कार्यक्रम में कुल दो हजार लोगों ने भाग लिया। आश्रम द्वारा आश्रम के तीन कर्मचारियों सुखचन्द मंडावी को नरेन्द्र सेवक पुरस्कार, श्रीमती मालती समरथ को निवेदिता पुरस्कार और श्री रामाधीन मरकाम को कृषक सम्मान पुरस्कार प्रदान किया गया।

राँची में वार्षिक महोत्सव आयोजित हुआ

१८ से २० मई २०२४ तक **रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची** में त्रिदिवसीय वार्षिकोत्सव का आयोजन किया गया। इसमें श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन और संदेश पर विभिन्न वक्ताओं द्वारा व्याख्यान दिये गये। सभाओं को स्वामी सत्संगानन्द, स्वामी अन्तरानन्द, एस. एन. झा, गोपालजी तिवारी, शैलेन्द्र सिंह, सुकुमार मुखर्जी आदि ने सम्बोधित किया। धर्मसभा के अध्यक्ष और मुख्य अतिथि थे रामकृष्ण मिशन, नरोत्तमनगर, अरुणाचल प्रदेश के सचिव स्वामी अच्युतेशानन्द जी महाराज। समस्त आगत अतिथियों का स्वागत आश्रम के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी ने किया। स्वामी दिव्यव्रतानन्द जी के भजन और अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम भी हुये।